राजस्थान ग्रामोत्थान एवं संस्कृत अनुसंधान संस्थान

(साहित्य अकादमी, भारत-सरकार से सम्बद्ध)

Email : rgsanskrit@gmail.com

ICH Scheme 2015-16

File No. : 28-6/Ich scheme/2015-16/90

Date : 21.04.2016

BLUE PRINT

राजस्थान की संस्कृत सांस्कृतिक साधना : एक गवेषणात्मक अध्ययन

भारत की अमूर्त सांस्कृतिक और विविध सांस्कृतिक परम्पराओं की संरक्षण योजना के तहत : राजस्थान की संस्कृत सांस्कृतिक साधना : 'एक गवेषणात्मक अध्ययन' परियोजना संस्कृति मंत्रालय, संगीत नाटक अकादमी, भारत सरकार से स्वीकृत व अनुमोदित है।

संक्षेप में परियोजना की परिचयात्मक पृष्ठभूमि :

राजस्थान की उर्वरा धरा न केवल अपनी आन-बान और शान के लिए ही अन्वाख्यात है बल्कि इसी पावनी वसुधा पर पं. मधुसूदन ओझा व महाराणा कुंभा जैसे विद्वान और शासक यहाँ की नायाब अनूठी स्थापत्य कला, वास्तुकला, चित्रकला, राजवंशीय परम्परा और रजवाड़े तथा ऐतिहासिक संस्कृत रचनाएँ, नाटक, संगीत व शिल्प से जुड़ी रचनाओं के प्रख्यात संस्कृत रचनाकार पं. अम्बिकादत्त व्यास, श्रीकृष्णभट्ट, कविकलानिधि रणछोड़ भट्ट तथा भक्तिमती मीरा जैसी प्रतिमाएँ यहीं की देन है। उल्लेखनीय है कि 18वीं सदी में राजवंशीय परम्परा और नगर निर्माण से ओतप्रोत गुलाबी नगरी, जयपुर के ही एक चर्चित कवि श्रीकृष्णभट्ट ने 'ईश्वर विलास' रचा। जिसमें जयपुर नगर का वैविध्यपरक वर्णन किया है। मेवाड़ के एक प्रसिद्ध कवि 'रणछोड़ भट्ट' ने महाराणा प्रताप की अतुलनीय शौर्यगाथा व राजसिंह पर आधारित **'राजप्रशस्ति'** महाकाव्य को 25 शिलाओं पर उत्कीर्ण करवाकर राजसमुद्र की नौचौकी नामक पाल की ताकों में स्थापित करवाया जो समूचे विश्व का एकमात्र शिलाओं पर उत्कीर्ण संस्कृत महाकाव्य है। मेवाड के लोलालक लाल महाराणा कुंभा ने 'संगीतराज' जैसे महाकाव्य का सृजन कर संगीत की एक नव विद्या का सूत्रपात किया तो वहीं कुंभा के ही आश्रित विद्वान् श्रीमण्डन ने प्रासाद मण्डनम् और राजवल्लभवास्तुशास्त्रम् जैसे ग्रन्थों की सर्जना की। जयपुर के कवि पौण्डरीक रचित जयपुर नरेश सवाई जयसिंह के निर्देश पर जयसिंहकल्पद्रुम की रचना कर धर्मशास्त्रीय पक्ष को उजागर किया है। जयदेव के संस्कृत ग्रन्थ गीत गोविन्द से प्रभावित हो मीरा ने 'राजगोविन्द' ग्रन्थ की रचना की थी। उन्होनें चित्तौड़ दुर्ग पर श्री मुरलीधर का मन्दिर बनवाकर उसकी पूजा अर्चनार्थ पं. गंगाधर को नियुक्त किया था। मीरा बाई ने बड़ा सारा धन और दो हजार बीघा जमीन राजस्थान के माण्डल तथा पुर के कस्बों में दान कर दिया था जो आज भी उनके वंशजों के अधिकार मे सैकड़ों विभागों में बंटी हुई विद्यमान है।

इसी प्रकार राजस्थानीय संस्कृत परम्परा में विशेष रूप से ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, नाट्य और पौराणिक पक्षों को लक्ष्य पर लिखे सर्वोत्कृष्ट संस्कृत रचनाओं के रचयिताओं और उनकी रचनाओं, उनके दुर्लभ चित्रों और राजस्थान के संस्कृत के शिलालेख, विविध ऐतिहासिक स्थलों आदि पर शोधपरक सामग्री का समावेश किया जा रहा है। प्रकृत शोध परियोजना 'राजस्थान की संस्कृत, सांस्कृतिक साधना : एक गवेषणात्मक अध्ययन' के तहत परियोजना की स्वीकृति के पश्चात् यह सारस्वत कार्य वित्तीय वर्ष 2015-16 में आरम्भ कर दिया गया था।

कार्य का वर्गीकरण -

परियोजना की स्वीकृति के पश्चात् राजस्थान ग्रामोत्थान एवं संस्कृत अनुसंधान संस्थान शाहपुरा की ओर से अधोलिखित विद्वानों व शिक्षाविदों को नियुक्त किया गया है जो इस परियोजना में अपनी सांस्कृतिक एवं साहित्यिकी अनुसंधानात्मक भूमिका भलीभांति निर्वहन कर रहे हैं।

1. डॉ. शंकरलाल शास्त्री - कई ग्रन्थों के रचयिता व विषय के अधिकृत विद्वान
2. श्रीमती सरिता शर्मा - कई परियोजनाओं के संचालन का अनुभव व विषय की अधिकृत विदुषी।
3. प्रो. सुबोध चन्द, ख्यात इतिहासविद्।
4. श्री हरिशंकर बालोठिया, कुमारचित्र, जयपुर, प्रसिद्ध चित्रकार।

प्रगति विवरण

इस परियोजना के लिए विभिन्न संदर्भग्रन्थों, इतिहास, संस्कृत और नाट्य से जुड़े राजस्थान के प्रमुख पुस्तकालयों व विश्वविद्यालयों, प्राच्य प्रतिष्ठानों की यात्राओं की सामग्री का संकलन एवं सूचीकरण आदि का कार्य किया गया। तत्पश्चात् कार्यारम्भ किया गया और राजस्थान के इतिहास, नाट्य और सांस्कृतिक सम्पदा तथा पौराणिक आख्यानों से जुड़े दिवंगत संस्कृत रचनाकारों का परिचयात्मक विवरण, रचनाओं की अभिनव सर्जना, समीक्षा व अनुसंधानात्मक पक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है साथ ही उन दिवंगत रचनाकारों का चित्रकार द्वारा चित्र भी बनाया जा रहा है साथ ही दुर्लभ चित्रों को भी संकलित किया जा रहा है।

इस सारस्वत कार्य के लिये काम में लिये जा रहे संदर्भ ग्रन्थों, मौलिक संस्कृत रचनाओं, शोध पत्रिकाओं, पुस्तकालयों आदि का प्रत्येक खण्ड के अन्त में सन्दर्भकोष नाम से सूची बद्ध किया जा रहा है। परियोजना का प्रथम भाग का कार्य पूर्ण कर लिया गया है। इस बाबत प्रदेश के विविध अंचलों यथा-उदयपुर, जोधपुर, अलवर, जयपुर, भरतपुर आदि स्थानों पर सम्बन्धित योजना के लिए शोध संदर्भ यात्राएँ भी की गईं।

उद्देश्य :

1. राजस्थान के प्रमुख संस्कृत रचनाकारों, नाट्यकारों की प्रमुख रचनाओं में छिपे सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और जनहितैषी पक्षों से शोधवर्ग के लिए यह परियोजना एक Road map के रूप में प्रतिफलित होगी साथ ही राजस्थान के प्रमुख दिवंगत संस्कृत रचनाकारों का जीवन प्रेरणास्पद जीवन परिचय व उनकी रचनाओं का अनुसंधानात्मक कार्य एक अभिनव वैज्ञानिक खोज साबित होगा।

2. संस्कृत के प्रमुख नाटककारों द्वारा वर्णित संगीत धुन से सजी-धजी छन्दोंबद्ध गीतियाँ संगीत के क्षेत्र में एक प्रमुख भूमिका अदा करेंगी साथ ही युवा कलाकार, गीतकार इन रचनाओं से अपने सर्जना संसार को समृद्ध कर सकेंगे।

3. राजस्थान के संस्कृत, सांस्कृतिक अध्याय में राजस्थान में संस्कृत रचनाओं, इतिहास लेखन, राजवंशीय परम्परा, रियासतों में संस्कृत, संस्कृत नाट्य, उपन्यास, कथादि की शृंखला, संस्कृत पत्रकारिता, संस्कृत काव्य, गद्य, पद्य, चम्पू व नाटक आदि रचनाओं से शोधार्थियों के लिए यह एक मानक आधार बन पायेगा। राजस्थान के 17वीं सदी से लेकर आधुनिक काल तक की प्रमुख संस्कृत रचनाओं और रचनाकारों का एक शोध (संग्रह) तैयार हो सकेगा।

5. राजस्थान के दिवंगत संस्कृत के प्रख्यात रचनाकारों के दुर्लभ चित्रों को चित्रकार द्वारा निर्मित चित्रवीथिका का संकलन हो सकेगा जो कि एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

6. राजस्थान में संस्कृत शिलालेखों का एक मानक आधार तय हो सकेगा जिसके आधार पर शोधकार्य, संपादन, प्रकाशन और इतिहास से जुड़े सारस्वत कार्यों को सम्पादित किया जा सकेगा।

7. राजस्थान के ही एक स्थल विराटनगर जो कि महाभारत के विराटपर्व पर आधारित है। विराटनगर में उपलब्ध पाण्डवों की तत्कालीन आश्रयस्थली यहाँ के विविध दृश्यों को संजोते पुरा - सम्पदा को सूचीबद्ध करने से पुरा-सम्पदा और पर्यटन को प्रोत्साहन मिल सकेगा। जिससे 'अतिथि देवो भव' की सार्वभौमिकता सिद्ध हो सकेगी और दुर्लभ चित्र अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकेंगे।

8. राजस्थान के प्रमुख नगरों की बनावट, निमार्ण, स्थापत्य, शिल्प, सौन्दर्य और इतिहासपरक संस्कृत रचनाओं से निकले शोध आधार आमजन के लिए उपदेशपरक सिद्ध हो सकेंगे। जैसे श्रीकृष्ण भट्ट, सीताराम भट्ट पर्वणीकर, कृष्णराम भट्ट, रणछोड़ भट्ट आदि आदि तो वहीं दूसरी ओर मदन शर्मा 'सुधाकर' और जगदीश चन्द्राचार्य, भट्ट मथुरानाथ शास्त्री, विद्याधर शास्त्री, पं. अम्बिकादत्त व्यास जैसे नाट्य और संगीत के संस्कृत रचनाकारों से नाट्य जगत् को एक अभिनव जानकारी व स्वर साधना का ज्ञान हो पायेगा।

10. जयपुर की वेधशाला समूचे विश्व के पर्यटकों को आकर्षित करने में कारगर सिद्ध हो सकेगी।

11. शोध परियोजना के तीन खण्डों में वर्णित सन्दर्भ कोष शोधार्थियों और सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण के लिए 'मील का पत्थर' साबित होगा। जिसमें इस परियोजना के मुख्य सन्दर्भों को उल्लिखित किया है।

समयावधि : इस परियोजना की समयावधि वित्तीय वर्ष 2015-16 व 2016-17 तक है। परियोजना के अनुमोदन के पश्चात् ही संस्थान ने अपना शोध कार्य आरम्भ कर दिया था। इस परियोजना में लगे विद्वानों की ज्ञान व श्रमसाधना का ही प्रतिफल है कि संस्थान ने परियोजना का एक भाग पूर्ण कर लिया है और इस उच्चस्तरीय कार्य के दूसरे खण्ड का कार्य आरम्भ कर दिया गया है। इस कार्य को 31 मार्च, 2017 तक स्तरीय रूप में समाप्त कर दिया जायेगा।

परियोजना का सूचीकरण :

'राजस्थान की संस्कृत, सांस्कृतिक साधना : एक गवेषणात्मक अध्ययन' विषयक परियोजना को तीन भागों में विभाजित किया

विषयानुक्रमणिका भागवार इस प्रकार है –

भाग – I संस्कृत रचनाकार (सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक रचनाओं पर आधारित)

भूमिका

1. राजस्थान की संस्कृत, सांस्कृतिक साधना : एक संक्षिप्त परिचय
2. पं. अम्बिकादत्त व्यास
3. पं. श्री कृष्णराम भट्ट
4. पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी
5. पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी
6. पं. छत्रधर शर्मा
7. संगीत : धुन के धनी जगदीश चन्द्राचार्य
8. पं. द्विजेन्द्र लाल पुरकायस्थ
9. पं. नवल किशोर काङ्कर
10. पं. नित्यानन्द शास्त्री
11. संदर्भ कोष
12. चित्रवीथिका

भाग – II संस्कृत नाट्यकार / रचनाकार खण्ड

भूमिका

1. श्री मथुरानाथ शास्त्री
2. पं. मदन शर्मा 'सुधाकर'
3. पं. मधुसूदन ओझा
4. श्री महावीर प्रसाद जोशी
5. विद्याधर शास्त्री
6. सीताराम भट्ट पर्वणीकर
7. कवि कलानिधि श्रीकृष्ण भट्ट
8. गुलाबचन्द शर्मा पाटलेन्दु
9. श्री गोपालनारायण बहुरा
10. जगज्जीवन भट्ट
11. श्री रणछोड़ भट्ट
12. संदर्भ कोष
13. चित्रवीथिका

भाग – III राजस्थानीय संस्कृत सांस्कृतिक साधना के विविध आयाम

भूमिका

1. राजस्थान की संस्कृत, सांस्कृतिक विकास यात्रा : एक गवेषणात्मक पक्ष
2. महाभारतकालीन ऐतिहासिक संस्कृति के आधार स्तम्भ : विराटनगर की सांस्कृतिक सम्पदा
3. जयपुर की वेधशाला
4. राजस्थान में संस्कृत के शिलालेख
5. सन्दर्भ कोष
6. चित्रवीथिका

परियोजना का कार्यक्षेत्र : (ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक व भौगोलिक दृष्टि से) – इस परियोजना का कार्यक्षेत्र राजस्थान प्रान्त है। राजस्थानीय विभिन्न नगरों / मण्डलों को तत्कालीन राजाओं द्वारा शिल्प और वास्तुशास्त्रीय दृष्टि से निर्माण प्राचीन रियासतें और इतिहासपरक रचनाओं का भरपूर सृजन किया गया है। सवाई जयसिंह जिसने जयपुर नगर की स्थापना की। देशभर से चुन–चुन कर विद्या पुरुषों को बुलाकर ऐतिहासिक ग्रन्थों में लगाया था। अतः राजस्थान के शूरवीरों की गाथा पर आधारित 20वीं सदी के पं. नगजीराम का 'वीरवंशवर्णन' जिसमें सिसोदिया वंशीय राजाओं का वर्णन, पं. गणेशराम शर्मा ने डूंगरपुर नरेशों व उनकी भक्ति तथा जनसेवा व शौर्यगाथा से जुडे प्रसंग लिखे तो वहीं श्री कृष्णराम भट्ट ने जयपुर विलास जिसमें जयपुर की बसावट का आँखों देखा हाल बयां किया है। राजस्थान के हाड़ौती क्षेत्र के सूर्यमल्ल मिश्र च चन्द्रशेखर रचित 'सुर्जनचरितमहाकाव्य' जिसमें बूंदी नरेश आदि का वर्णन है तथा हाडावंश पर आधारित रामविलास महाकाव्य किसी से छिपा नहीं है। बीकानेर के राजा अनूपसिंह भी स्वयं संस्कृत के विद्वान् थे और उन्होनें कई काव्यों की सर्जना की थी। सीताराम भट्ट पर्वणीकर ने सांस्कृतिक व इतिहास से ओतप्रोत 'जयवंश महाकाव्य' की रचना की थी। जिसमें जयपुर कला–शिल्प सौन्दर्य व राजसी परम्पराओं का सुनहरा वर्णन है। मेवाड़ का इतिहास रणछोड़ भट्ट ने लिखा है।

इसी प्रकार भौगोलिक दृष्टि से अरावली शृंखला से सजी हमारे मत्स्यांचल अलवर आदि सीमाएँ प्रकृति की स्नेहमयी गोद मे फूल –फूल रही हैं। इस प्रकार राजस्थान न केवल ऐतिहासिक व सांस्कृतिक प्रत्युत् साहित्य, कला और संगीत से भी समृद्ध है। संगीत के प्रतीक महाराणा कुंभा, मीरा बाई तो वहीं इतिहास के महाराणा प्रताप, पृथ्वीराज चौहान इसी माटी की महक रूपी गौरव गरिमा के अमर गायक हैं। झीलों की नगरी उदयपुर जो प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए तो जगजाहिर है ही, यहाँ स्थापित पश्चिम सांस्कृतिक केन्द्र का शिल्पग्राम जहाँ कई कलाओं का प्रदर्शन होता है तो वहीं प्रदेश के प्राच्य प्रतिष्ठानों, संग्रहालयों व पुस्तकालयों में छिपी धरोहर व चित्तौड़गढ आदि की स्थापत्य कला कम मनमोहक नहीं है। इस प्रकार राजस्थानीय धरा समग्र दृष्टि से उर्वरा कही जा सकती है। इस शोध परियोजना में विशेषतः इन्हीं पक्षों को प्रमुखता से प्रस्तुत किया जाएगा।

चित्रवीथिका

इस परियोजना को तीन भागों में विभक्त किया गया है। इस प्रकार प्रथम संस्कृत रचनाकार खण्ड में दिवंगत ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक संस्कृत रचनाकारों के दुर्लभचित्रों को हालिया चित्रकार द्वारा निर्मित कराकर बहुरंगी रूप में चित्रित किया गया है। इसके दूसरे भाग संस्कृत नाटककार में दिवंगत नाट्यकारों के दुर्लभ चित्रों को संजोया जा रहा है तो तीसरे भाग में राजस्थान के महाभारतकालीन ऐतिहासिक संस्कृति की प्रतीक विराटनगर, जयपुर वेधशाला व इसी प्रकार इतिहास व पुरा–सम्पदा से जुड़े चित्रों को संजोया जा रहा है।

उपसंहार :

राजस्थान की स्वर्णिम ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और गौरवमयी झाँकी की प्रतीक यह परियोजना सांस्कृतिक विरासत, संगीत, नाटक, साहित्य, संस्कृत और इतिहास के क्षेत्र के लिए अनूठी पहल है। इस परियोजना में जहाँ एक ओर राजस्थान के प्रख्यात इतिहास, पौराणिक आख्यान, नाटक व सांस्कृतिक सम्पदा से ओत–प्रोत रचनाकारों के जीवनवृत्त, समूची रचनाओं पर अनुसंधान व समीक्षा व कृतिकार के दुर्लभ चित्रों को संजोना है तो वहीं शोधार्थियों व सांस्कृतिक उपक्रमों से जुडे विद्वानों व संगठनों के लिए यह एक

आधार मानक (Road map) परियोजना है जिसके अन्तर्गत न केवल संस्कृत रचनाकारों बल्कि राजस्थान की विविधता भरी बहुरंगी संस्कृति को भी वर्णित किया है। अतः निःसंकोच यह परियोजना 'सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय' की प्रतीक है।

निदेशक

राजस्थान ग्रामोत्थान एवं संस्कृत अनुसंधान संस्थान
श्रीराम कॉलोनी, शाहपुरा, जयपुर राजस्थान 303103

संगीत नाटक अकादेमी Sangeet Natak Akademi
NATIONAL ACADEMY OF MUSIC, DANCE AND DRAMA
RABINDRA BHAVAN, FEROZE SHAH ROAD, NEW DELHI-110 001

संगीत नाटक अकादेमी

NATIONAL INVENTORY REGISTER FORM

भारत की अमूर्त सांस्कृतिक विरासत एवं परम्पराओं के संरक्षण की योजना का प्रपत्र
राजस्थान ग्रामोत्थान एवं संस्कृत अनुसंधान संस्थान शाहपुरा जयपुर (राज.)

1. प्रस्तावित योजना का कार्यक्षेत्र राज्य : **राजस्थान**
2. योजना के प्रस्तावित विरासत / परम्परा का नाम (क्षेत्रीय, स्थानीय हिन्दी एवं अग्रेजी में) : क्षेत्रीय **RAJASTHAN KI SANSKRIT SANSKRITIK SADHANA : EK GAVESHNATMAK ADHAYAN** **राजस्थान की संस्कृत, सांस्कृतिक साधना : एक गवेषणात्मक अध्ययन**
3. योजना का भाषिक क्षेत्र : **हिन्दी, संस्कृत**
4. योजना के प्रस्तावित सांस्कृतिक विरासत से सम्बन्धित प्रतिबन्धित ग्राम, समुदाय, समूह, परिवार एवं व्यक्ति का नाम एवं सम्पदा : **समूचे राजस्थान प्रान्त के संस्कृत के सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, नाटक और संगीत विषयक प्रख्यात रचनाकार एवं नाटककार श्री रणछोड भट्ट, अम्बिकादत्त व्यास, श्रीकृष्णराम भट्ट, भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री, मधुसूदन ओझा आदि तथा राजस्थान की प्रमुख संस्कृत साधना, शिलालेख, पत्रकारिता व विविध ऐतिहासिक विद्याओं का गवेषणात्मक अध्ययन (पृथक् से पेज Report में विवरण उपलब्ध है)**
5. योजना के प्रस्तावित सांस्कृतिक विरासत की जीवंतता का विस्तारित क्षेत्र : **राजस्थान प्रान्त**
6. योजना की प्रस्तावित विरासत / परम्परा की पहचान एवं उसकी परिभाषा व उसका विवरण

1. **संस्कृत का परम्परागत ज्ञान, संगीत, नाटक विधा की अभिव्यक्तियों का अंकन**
2. **प्रदर्शनकारी कलाऐं, राजस्थान के संस्कृत नाट्य विधा में वर्णित कलाओं का अंकन।**
3. **सामाजिक रीति -रिवाजों, विवाह पद्धति, षोडश संस्कार, दीपोत्सव, होली, राजस्थान का प्रसिद्ध मेला गणगौर आदि का संस्कृत रचनाकारों की रचनाओं मे अंकन एवं उसका शोध परक विवेचन।**
4. **पर्यावरण संरक्षण, गौ-संरक्षण, प्राकृतिक आपदाओं आदि का अंकन।**
5. **राजस्थान की प्रसिद्ध वास्तुकला, चित्रकारी तथा चित्तोड़,उदयपुर आदि का वर्णन।**
6. **राजस्थान के प्रमुख संस्कृत रचनाकारों का परिचय, उनकी सांस्कृतिक विधियों का शोधपरक गवेषण।**

7. योजना का एक रूचिपूर्ण सारगर्भित संक्षिप्त परिचय :

राजस्थान की धरा न केवल अपनी आन-बान और शान के लिए ही चर्चित है बल्कि साहित्य, संगीत और कला की त्रिवेणी के रूप में भी जगजाहिर है। यह योजना राजस्थान की संस्कृत सांस्कृतिक साधना पर आधारित है। इस योजना के तहत प्रदेश के प्रमुख ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से चुनिंदा दिवंगत संस्कृत रचनाकारों, नाटककारों का उनकी रचनाओं सहित परिचयात्मक, समीक्षात्मक व अनुसंधानात्मक कार्य किया जा रहा है। इसके साथ ही राजस्थान की संस्कृत साधना, संस्कृत शिलालेख इतिहासपरक, पर्यटन स्थल, राजस्थानीय संस्कृत रचनाकारों के गद्य, पद्य, नाट्य , चम्पू आदि विधाओं से रची रचनाओं का अंकन किया जा रहा है। दिवंगत संस्कृत रचनाकारों के चित्रकार द्वारा निर्मित बहुरंगी चित्रों व राजस्थान के विविध ऐतिहासिक व सांस्कृतिक स्थलों को भी दर्शाया जा रहा है। इस योजना को तीन भागों में विभाजित किया गया है। प्रथम भाग संस्कृत रचनाकार, द्वितीय नाटककार और अन्तिम भाग, राजस्थानीय संस्कृत साधना को समर्पित है। प्रत्येक भाग के अन्त में संदर्भ कोष भी देखने को मिलेगा। जो कि शोधार्थियों के लिए काफी उपयोगी सिद्ध होगा। वहीं चित्रवीथिका दर्शक - दीर्घा और इतिहास के लिए एक प्रामाणिक दस्तावेज है।

8. योजना के प्रस्तावित सांस्कृतिक विरासत / परम्परा के तत्त्वों के अधिकारी व्यक्ति और अभ्यासी तथा उनकी विशेष भूमिका :

    1. डॉ. शंकरलाल शास्त्री, योजना निदेशक, राजस्थान ग्रामोत्थान एवं संस्कृत अनुसंधान संस्थान शाहपुरा, जयपुर
    2. प्रो. सुबोधचन्द, इतिहासविद्
    3. श्रीमती सरिता शर्मा : योजना गवेषक
    4. श्री हरिशंकर बालोठिया, चित्रकार, जयपुर

9. **परम्परागत ज्ञान एवं राजस्थान की संस्कृत साधना का विशिष्ट परिचयात्मक पृष्ठ भूमि का अंकन / युवापीढी और राजस्थान के संस्कृत सांस्कृतिक जगत् के लिए Road map के रूप में चिह्नित।**

10. युवापीढी और साहित्य, संस्कृत शिक्षा और साहित्य तथा राजस्थान संस्कृत साधना से जुड़े शोधार्थियों के लिए एक आधार संदर्भ कोष के रूप में उद्विकसित।

11. NA (लागू नहीं)

12. प्रस्तावित सांस्कृतिक विरासत योजना क्या उससे सम्बन्धित संवाद के लिए पारदर्शिता, सजगता और प्रोत्साहन को सुनिश्चित करती है : हाँ

13. योजना के प्रस्तावित सांस्कृतिक विरासत / परम्परा के तत्वों के संरक्षण के लिए उठाए जाने वाले उपायों / कदमों / प्रयासों के बारे में जानकारी में जो उसको संरक्षित या संवर्धित कर सकते हैं:-

14. **राजस्थान के प्रमुख ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और नाट्यों पर सर्वोत्कृष्ट रचना करने वाले दिवंगत संस्कृत रचनाकारों के परिचय, कृतित्व समीक्षण व शोध तथा उनके विलुप्त होते दुर्लभ चित्रों को बचाने का यह अनूठा प्रयास है। राजस्थान की संस्कृत साधना में जुड़े पक्षों ऐतिहासिक व पर्यटन स्थल व संस्कृत शिलालेख, नगर निर्माण, वास्तु व चित्रकला का अंकन आदि कार्य हमारी संस्कृत विरासत को संरक्षित व संवर्धित करने में उल्लेखनीय कड़ी**

कही जा सकती है।

15. स्थानीय स्तर पर एक उच्चस्तरीय स्क्रीनिंग कमेटी द्वारा चयनित व अनुमोदन इस योजना के अनुरूप स्तरीय विद्वानों द्वारा अंचल की साधना के साथ ही राजस्थान प्रान्त के उन संस्कृत रचनाकारों का परिचयात्मक, समीक्षात्मक और शोधात्मक कोष तैयार किया जा रहा है। जिनका साहित्य, सांस्कृतिक विरासत, इतिहास और पर्यटन तथा नाट्य परम्परा पर आधारित था साथ ही प्रदेश की संस्कृत साधना के सर्जनात्मक आयामों को भी दर्शाया जा रहा है तो वहीं दुर्लभ चित्रों को भी संजोया जा रहा है। ऐसे महत्त्वपूर्ण सारस्वत उपक्रम को अंचल से राष्ट्रीय स्तर के पटल पर ले जाने के लिए कार्य किया जा रहा है।

16. यदि समय रहते इस राजस्थानीय संस्कृत, संस्कृत सांस्कृतिक विरासत को नहीं संभाला गया तो यह रचनाकार और प्रदेश की संस्कृत साधना इतिहास के तहखानों में कहीं दफन हो जायेगी और हम एक दुर्लभ और सर्वग्राह्य सांस्कृतिक विरासत को खो देंगे। आर्थिक अभाव और इस विरासत की ओर ध्यान न दिया जाना हमारे इतिहास, सांस्कृतिक और नाट्य जगत् के लिए अपूरणीय क्षति होगी।

17. इस सांस्कृतिक विरासत के लिए राजस्थान के प्रमुख दिवंगत संस्कृत रचनाकारों, उनकी कृति, समीक्षण और अनुसंधान तथा दुर्लभ चित्रों के साथ इसे संजोया जा रहा है। इस योजना की समाप्ति के पश्चात् भारत सरकार द्वारा इसे संदर्भ कोष के रूप में प्रकाशन करवाकर भविष्य की सांस्कृतिक निधि के साथ आत्मसात् किया जा सकता है। यह राजस्थान की संस्कृत साधना का एक सर्व प्रामाणिक, तथ्यपूरक, शोधपरक महत्वूपर्ण बृहद् संदर्भ कोष होगा।

18. सांस्कृतिक विरासत की इस योजना में एक सामुदायिक सहभागिता से कार्य प्रस्तावित है। एक उच्च स्तरीय शिक्षविदों / विषय विशेषज्ञों के साथ ही राजस्थान के उन वंशजों, परिवारों का योगदान जिनका इस योजना में अंकन किया गया है। साथ ही प्राच्य प्रतिष्ठानों, विश्वविद्यालयों, पर्यटन स्थलों व सम्बन्धित विद्वानों की उल्लेखनीय भूमिका कही जा सकती है।

19. प्रस्तावित सांस्कृतिक तत्त्वों से जुड़े / सम्बन्धित सामुदायिक संगठन, गतिविधि व गैर सरकारी संस्थाएं

१. राजस्थान ग्रामोत्थान एवं संस्कृत अनुसंधान संस्थान, शाहपुरा, जयपरु

२. मंजुनाथ स्मृति संस्थान,जयपरु : देवर्षि कलानाथ शास्त्री, अध्यक्ष,सी-स्कीम, जयपुर ०१४१-२३७६००९

३. अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर

४. डॉ. नारायण शास्त्री, काङ्कर, जयपुर राष्ट्रपति सम्मानित मनीषी, ०९७९९२०४६२८

५. मेहरानगढ़ म्यूजियम ट्रस्ट, जोधपुर

६. संजय संग्रहालय, जयपुर

७. जैसलमेर का जैन ग्रन्थागार, जैसलमेर

८. साहित्य मन्दाकिनी : संपादक डॉ. शंकरलाल शास्त्री, शाहपुरा, जयपुर

20. मौजूदा इन्वेटरी डेटाबेस या डाटा क्रिएशन सेंटर :

१. **राजस्थान अभिलेखागार, बीकानेर**

२. **राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, उदयपुर, अलवर, जयपुर, भरतपुर**

३. **राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर**

४. **राजस्थान के विश्वविद्यालयों के शोध विभाग व पुस्तकालय**

21. सांस्कृतिक विरासत के तत्त्वों में संबंधित प्रमुख प्रकाशित संदर्भ सूची व अन्य सामग्री का समग्र वर्णन इस योजना के तीन भागों में विभाजित सामग्री के प्रत्येक भाग के अन्त में संदर्भ कोष के रूप में पठनीय है।

निदेशक

राजस्थान ग्रामोत्थान एवं संस्कृत अनुसंधान संस्थान

श्रीराम कॉलोनी, शाहपुरा, जयपुर राजस्थान 303103

राजस्थान ग्रामोत्थान एवं संस्कृत अनुसंधान संस्थान

(साहित्य अकादमी, भारत-सरकार से सम्बद्ध)

Email : rgsanskrit@gmail.com

ICH Scheme 2015-16

File No. : 28-6/Ich scheme/2015-16/90 Date : 21.04.2016

भूमिका भाग-I

'कृतिर्यस्य सः जीवति' अर्थात् जिसकी रचना है। वस्तुतः वह मृत्यु को पाकर भी अमर है। राजस्थान की धरा संस्कृत साहित्य की दृष्टि से बहुत ही उर्वरा रही है। यहाँ विगत तीन-चार शताब्दियों से इतिहासपरक और सांस्कृतिक विरासत से ओतप्रोत संस्कृत महाकाव्य, गद्यकाव्य, गीतिकाव्य, उपन्यास व नाटकादि सर्जनात्मक विधाओं में उत्कृष्ट संस्कृत रचना करने वाले रचनाकार और शास्त्र लेखन करने वाले विद्वान् निरन्तर सारस्वत साधना करते रहे हैं। राजस्थान की धरा न केवल अपनी आन बान और शान के लिए ही अन्वाख्यात है बल्कि इसी धरती पर साहित्य, संगीत और कला की अजस्र स्रोतस्विनी भी प्रवाहित होती है। प्रकृत शोध योजना भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय की संगीत नाटक अकादमी नई दिल्ली द्वारा प्रायोजित 'भारत की अमूर्त सांस्कृतिक विरासत एवं परम्पराओं के संरक्षण की योजना' (ICH) के तहत **'राजस्थान की संस्कृत साधना :** एक गवेषणात्मक अध्ययन' विषयक योजना के प्रथम भाग के रूप में राजस्थान के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक विषयों पर संस्कृत में सर्वोत्कृष्ट व मौलिक समृद्ध रचना करने वाले गत दो-तीन शताब्दियों में हुए प्रमुख कवि, गद्यकार, कथाकार आदि साहित्य सर्जकों एवं पत्रकारों के शोधपरक जीवन परिचय, कृतित्व समीक्षण और जनहितैषी पक्षों को अनुसंधानात्मक रूप में वर्णित किया है।

इस भाग में : 'राजस्थान के संस्कृत रचनाकार' के प्रथम खण्ड में सर्वप्रथम प्रथम अध्याय 'राजस्थान की संस्कृत, सांस्कृतिक साधना : एक संक्षिप्त परिचय के अन्तर्गत देशी रियासतों में संस्कृत, जहाँ उदयपुर, बूंदी, जयपुर, बीकानेर व जोधपुर आदि सभी रियासतों के प्रामाणिक इतिहास उन संस्कृत महाकाव्यों में निबद्ध हैं जिनके आधार पर परवर्ती इतिहासकारों ने इतिहास लिखे हैं। आज भी मेवाड़ की प्रशस्तियों में तथा महाकवि रणछोड़ भट्ट कृत राजप्रशस्ति जैसे महाकाव्यों में मेवाड़ का इतिहास शिलालिखित है अजितोदय और अमरसार जैसे काव्यों से जोधपुर का इतिहास निकला है तो वहीं श्रीकृष्णभट्ट के 'ईश्वरविलास' से जयपुर का इतिहास मिला है। इसी प्रकार इस अध्याय में भारती, स्वरमंगला, साहित्य मन्दाकिनी जैसी प्रदेश की संस्कृत पत्रिकाएँ तथा राजस्थानीय संस्कृत कविता, गद्य, नाटक, संस्कृत प्रसारण सेवा राजस्थान के प्रमुख संस्कृत कृतिकारों का संक्षिप्त उल्लेख किया गया है।

दूसरे अध्याय में जयपुर के पं. अम्बिकादत्त व्यास जिन्होनें इतिहासपरक छत्रपति शिवाजी के अदम्य शौर्य और वीरता से ओतप्रोत संस्कृत में शिवराजविजय उपन्यास की रचना कर राजस्थान के इतिहास में श्री वृद्धि की है साथ ही उनके भारत सौभाग्य नाटक, गौसंकट नाटक संस्कृत में सामवतम् नाटक जिसका आधार स्कन्द पुराण के ही एक पौराणिक आख्यान को नाटक की कथा का मुख्य आधार बनाकर सामवान नामक एक ऋषि पुत्र का नारी में परिवर्तित होकर उसके ही पूर्व मित्र 'सुमेधा' से विवाह का वृत्तान्त मुखरित हुआहै।

तीसरे अध्याय के अन्तर्गत 'श्रीकृष्णराम भट्ट एवं उनके कच्छवंश महाकाव्य जिसमें कच्छवंशीय परम्परा का ऐतिहासिक विवेचन है साथ ही जयपुर की सुनहरी स्थापत्य कला, यहाँ के प्रसिद्ध गणगौरी मेले का वर्णन, मेलककुतुम में उपनिबद्ध किया गया है साथ ही आयुर्वेद पर लिखी रचनाओं का भी इस अध्याय में शोधपरक सामग्री का समावेश किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर अनुसंधानात्मक रूप में महत्वपूर्ण सामग्री का समावेश किया गया है जिन्हें सर्वप्रथम भारत सरकार ने 1958 में पुरस्कृत किया था। 'कश्चित् कविः और पितुरुपदेशः कथाएँ प्रेरणास्पद व इतिहासपरक हैं। संस्कृत जगत् के लिए चतुर्वेदी का अवदान अंकनीय है।

5वें अध्याय में 'पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी' के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को विवेचित किया गया है। देशभर में जो **'उसने कथा था'** कहानी से अमर हो जाने वाले गुलेरी जी ने 'महाभारत' जैसे इतिहासपरक ग्रन्थ का अंग्रेजी में अनुवाद किया था।

शृंखला की इसी कड़ी में 6वें अध्याय के रूप में पं. छत्रधर शर्मा के व्यक्तित्व के साथ ही उनके द्वारा इस रचित राजस्थानीय राजवंश परम्परा के अमिट शौर्य और पराक्रम की पर्याय 'राजभूति काव्यम' का संपादन किया साथ ही टोण्डा प्रदेश के प्रमुख शासक कुम्भाराय के जीवन पर संस्कृत महाकाव्य रचकर इतिहास में एक अभिनव अध्याय का सूत्रपात किया।

इस भाग के 7वें अध्याय में एक ऐसे व्यक्तित्व को समर्पित है जिन्होने संगीत के क्षेत्र में एक द्वि त्रिताल, ध्रुपद आदि से ओतप्रोत रचना 'संगीत लहरी' की रचना कर संस्कृत संगीत के क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान दिया। ऐसे प्रमुख गीतकार थे पं. जगदीश चन्द्राचार्य।

8वें अध्याय में कच और देवयानी को लक्ष्य कर पौराणिक महाकाव्य लिखने वाले श्री द्विजेन्द्रलाल शर्मा 'पुरकायस्थ ' के संस्कृत सर्जना संसार पर आधारित है तो वहीं 9वें अध्याय में राष्ट्रपति सम्मानित विद्वान् श्री नवलकिशोर काङ्कर के व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व को शोध रूप में प्रस्तुत किया है।

10वाँ अध्याय जोधपुर के पं. नित्यानन्द शास्त्री के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर आधारित है। श्रीराम के जीवन दर्शन पर आधारित 'श्रीरामचरिताब्धिरत्नम्' जैसे विशाल महाकाव्य का अनुसंधानात्मक रूप में विवेचन उपनिबद्ध किया है।

11वें अध्याय को **'सन्दर्भ कोष'** के रूप में रखा गया है। उललेखनीय है कि इस शोध कार्य के तहत प्राप्त शोध आधार को यहाँ अंकित किया गया है ताकि शोधार्थियों के लिए भी यह जानकारी एक संजीवनी की पर्याय बन सके वहीं इस भाग के अन्त में **'चित्रवीथिका'** के रूप में इस खण्ड के प्रमुख दिवंगत संस्कृत रचनकारों के दुर्लभ चित्रों को चित्रकार द्वारा निर्मित करवाया गया है जो इतिहास एवं सांस्कृतिक सम्पदा के अभिन्न अंग कहे जा सकते हैं। इस प्रकार यह प्रथम भाग राजस्थान के उन दिवंगत संस्कृत रचनाकारों को समर्पित है जिन्होंने इतिहास, सांस्कृतिक व संगीत आदि विविध विधाओं में उल्लेखनीय भरपूर साहित्य सर्जनात्मक सारस्वत कार्य किया है।

'गच्छतः स्खलनं क्वापित' इन्हीं भावनाओं के साथ ऐसे दिवंगत मनीषी प्रवरों को नमन करते हुए हम अपनी लेखनी को इस भाग के साथ यहीं विराम देते हैं।

निदेशक
राजस्थान ग्रामोत्थान एवं संस्कृत अनुसंधान संस्थान
श्रीराम कॉलोनी, शाहपुरा, जयपुर राजस्थान 303103

राजस्थान की संस्कृत सांस्कृतिक साधना : एक गवेषणात्मक अध्ययन

भाग- 1

निदेशक

राजस्थान ग्रामोत्थान एवं संस्कृत अनुसंधान संस्थान

शाहपुरा, जयपुर

Email : rgsanskrit@gmail.com

राजस्थान की संस्कृत सांस्कृतिक साधना

(एक गवेषणात्मक अध्ययन)

भाग - 1

निदेशक

राजस्थान ग्रामोत्थान एवं संस्कृत अनुसंधान संस्थान

शाहपुरा, जयपुर

Email : rgsanskrit@gmail.com

राजस्थान की संस्कृत सांस्कृतिक साधना

(एक गवेषणात्मक अध्ययन)

भाग-1

संस्कृत रचनाकार खण्ड

पारम्परिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक रचनाओं के प्रमुख संस्कृत रचनाकार

❊ विषयानुक्रमणिका ❊

1.	राजस्थान की संस्कृत सांस्कृतिक साधना : एक संक्षिप्त परिचय	4
2.	संस्कृत उपन्यासकार पं. अम्बिकादत्त व्यास	19
3.	पं. श्रीकृष्णराम भट्ट (ऐतिहासिक संस्कृत काव्य जयपुरविलास के रचयिता)	63
4.	पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी	70
5.	पं. चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी'	84
6.	पं. छत्रधर शर्मा	99
7.	संगीत : धुन के धनी पं. जगदीशचन्द्राचार्य	107
8.	द्विजेन्द्र लाल शर्मा पुरकायस्थ	113
9.	पं. नवलकिशोर काङ्कर	118
10.	पं. नित्यानन्द शास्त्री	128
11.	संदर्भ कोष	136
12.	चित्रवीथिका (इस खण्ड के संस्कृत रचनाकारों के चित्रकारों द्वारा निर्मित बहुरंगी चित्र)	

राजस्थान की संस्कृत सांस्कृतिक साधना : एक संक्षिप्त परिचय

इस अध्याय में राजस्थान के विभिन्न मण्डलों पर रची गई ऐतिहासिक संस्कृत रचनाएँ, देशी रियासतों में भरे हैं संस्कृत के भाण्डागार, प्रदेश की कथा, नाटक व काव्य से उर्वरा रही है राजस्थान की धरा एवं संस्कृत पत्रकारिता में भी हुए हैं व्यापक अनुसंधान आदि विषयों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

संस्कृत साहित्य को राजस्थान का अवदान संस्कृत के इतिहास में सदा गौरवपूर्वक स्मरण किया जाता रहा है। देश में शायद इस प्राचीन भाषा की इतनी उल्लेखनीय सेवा अन्य एक-दो राज्यों ने ही की होगी। वैदिक यज्ञ-यागों की पुण्यस्थली सरस्वती नदी जहां जाकर अन्तःसलिला हो गई थी वहीं से राजस्थान की उत्तरी सीमा शुरू होती है जहां प्राचीनतम वैदिक संस्कृति के अवशेष आज भी पीलीबंगा जैसे स्थानों में (गंगानगर जिले में) पाये जाते हैं। आठवीं शती के स्वनामधन्य संस्कृत कवि माघ जो कालिदास-भारवि के साथ संस्कृत महाकवियों की 'बृहत्-त्रयी' बन जाते हैं– राजस्थान के भीनमाल गाँव के थे जो आज जालौर जिले में है। उन जैन महाकवियों में अनेक इसी राज्य के थे जिनका नाम विश्व में आदर-पूर्वक लिया जाता है। भीनमाल के हरिभद्रसूरि, चित्तौड़ के सिद्धर्षिसूरि, बैराठ के बाडव, साँचोर के समयसुन्दर गणी आदि तथा हमीर महाकाव्य के प्रणेता नयचन्द्र सूरि, गुणरत्न सूरि, धनपाल आदि मूर्धन्य विद्वान राजस्थान की ही देन हैं।

देशी रियासतों में संस्कृत :–

देशी रियासतों के राजाओं ने अपने राज्यों के इतिहास को संभवतः अमर बनाने के दृष्टिकोण से ही इस कालजयी भाषा के काव्यों में अपना वंशवृत्त निबद्ध करवाया था। उदयपुर, बूंदी, जयपुर, जोधपुर आदि सभी रियासतों के प्रामाणिक इतिहास उन संस्कृत महाकाव्यों में निबद्ध हैं जिनके आधार पर परवर्ती इतिहासकारों ने इतिहास लिखे

हैं। आज भी मेवाड की प्रशस्तियों में तथा महाकवि रणछोड़ कृत 'राजप्रशस्ति' जैसे महाकाव्यों में मेवाड का इतिहास शिलालिखित है, 'अजितोदय' और 'अमर-सार' जैसे काव्यों से जोधपुर का इतिहास निकला है, श्रीकृष्ण भट्ट कविकलानिधि के 'ईश्वर-विलास' जैसे काव्यों से जयपुर का इतिहास मिला है। संस्कृत को इस राज्य की सबसे बड़ी देन हैं वे प्राचीन ग्रन्थागार जिनमें हजारों की संख्या में आज भी दुर्लभ संस्कृत पांडुलिपियां गुणग्राहकों की प्रतीक्षा कर रही हैं। इनमें सबसे बडा है जैसलमेर का जैन ग्रन्थागार जहां से प्रसिद्ध प्राच्य शास्त्री डॉ. बूलर ने बिल्हण के महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरित' की पांडुलिपि प्राप्त की थी और जहां वाक्पतिराज के प्राकृत इतिहास काव्य 'गउडवहो' की एक मात्र पांडुलिपि मिली थी। ऐसे समृद्ध ग्रन्थागारों की कुछ निधि जोधपुर के सरकारी प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान में, चित्तौड़, फतेहपुर, कांकरोली, नाथद्वारा, विद्या भवन उदयपुर आदि पुस्तकालयों में, जयपुर का पोथीखाना, बीकानेर की अनूप संस्कृत लाइब्रेरी तथा बूंदी, अलवर आदि के राजप्रसादों में नमूने के रूप में देखी जा सकती है।

यहां के राजाओं का संस्कृत वैदुष्य एक अलग ही कीर्तिमान है। उदयपुर के राणा कुंभा ने जयदेव के 'गीत-गोविन्द' की प्रसिद्ध टीका 'रसिकप्रिया' ही नहीं लिखी, अनेक शिल्पशास्त्रीय तथा संगीतशास्त्रीय ग्रन्थ भी संस्कृत में लिखे। जयपुर के सवाई जयसिंह ने 'यंत्रराज-रचना' जैसे ग्रन्थ संस्कृत में लिखे। उन्होंने संस्कृत विद्वानों को आश्रय देकर संस्कृत की जो सेवा की उसकी मिसाल तो इतिहास में दुर्लभ है ही। यही कारण है कि इन रियासतों में विभिन्न शास्त्रों के विद्वानों ने जो प्रभूत राजसम्मान देकर देश के कोने-कोने से लाकर बसाये गये थे, रोजी-रोटी के पचडे से निश्चिन्त होकर विपुल साहित्य-सर्जना की है। वैदुष्य की ऐसी सतत साधना का केन्द्र होने के कारण ही जयपुर 'दूसरी काशी' कहा जाता था। यहां संस्कृत के कवि, ज्योतिषी, दार्शनिक, वेदविद्, वैद्य, तंत्र-शास्त्री, वैयाकरण तथा लेखक बहुत बड़ी संख्या में बसते थे और यहां के संस्कृत कॉलेजों में विद्यादान करते थे। इसी ख्याति से आकृष्ट होकर दूर-दूर से छात्र यहां संस्कृत पढने आते थे। इस युग के मूर्धन्य संस्कृत विद्वान् महामहोपाध्याय डॉ. गोपीनाथ कविराज इसीलिये छात्रावस्था में यहां पढने आये थे। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, मधुसूदन

ओझा, गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री, मोतीलाल शास्त्री आदि विद्वान बीसवीं सदी की भारत-ख्यात विभूतियां थीं जो इसी धरती की देन हैं।

संस्कृत का पुनररुत्थान :–

यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि उन्नीसवीं सदी के अन्त में मुद्रणालयों के प्रचार के कारण प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों के प्रकाशन का जो अभियान 'निर्णयसागर', वेक्टेश्वर प्रेस आदि मुद्रणालयों ने प्रारम्भ किया और जिसके कारण संस्कृत साहित्य में एक पुनर्जागरण आया, उसमें राजस्थान के संस्कृत विद्वानों की अग्रणी भूमिका थी। 'काव्यमाला' नाम से संस्कृत ग्रन्थाों की सिरीज निर्णयसागर प्रेस बम्बई से निकली थी जिसमें ९५ स्तरीय संस्कृत ग्रन्थ निकले और १४ गुच्छकों में १२८ संस्कृत काव्य प्रकाशित हुए। इस काव्यमाला के संपादन के लिये जयपुर के विद्वानों ने अग्रणी भूमिका निभाई। महामहोपाध्याय दुर्गाप्रसाद शर्मा, म.म. शिवदत्त दाधीच, केदारनाथ शर्मा आदि जयपुरीय विद्वानों द्वारा संपादित यह ग्रन्थमाला संस्कृत के इतिहास का स्वर्णिम अध्याय है।

आयुर्वेद की शिक्षा के जो केन्द्र राजस्थान में हैं उन्होंने भी भारत ख्याति के विद्वान पैदा किये। कृष्णराम भट्ट, स्वामी लक्ष्मीराम, नन्दकिशोर वैद्य आदि कुछ ऐसे ही विद्वान यहां की देन हैं। ज्योतिष विद्या का तो जयपुर सदा से ही प्रमुख केन्द्र रहा है। जगन्नाथ सम्राट जैसे विद्वानों ने अरबी के खगोल ग्रन्थों का यहीं संस्कृत में अनुवाद किया था।

कविता–

राजस्थान में काव्य रचना का इतिहास अनेक शताब्दियों से जीवन्त है। गत ७-८ शताब्दियों के तो काव्य भी मिलते हैं। इनमें विभिन्न राजवंशों द्वारा लिखाये गये ऐतिहासिक काव्य तो हैं ही जिनमें श्रीकृष्ण भट्ट का ईश्वर-विलास, रणछोड भट्ट की राजप्रशस्ति, चन्द्रशेखर का सुरजनचरित्र (बून्दी) विश्वनाथ रानडे का रामविलास (१६८०), सीताराम परवणीकर का जयवंश (१८३०) कृष्णराम भट्ट का कच्छवंश आदि राजस्थान के इतिहास के स्त्रोत रहे हैं। पृथ्वीराज चौहान का इतिहास जयानक ने पृथ्वीराज

विजय में लिखा है। मेवाड का इतिहास जीवन्-धर के अमरसार में, सदाशिव नागर के राजरत्नाकर में, बिहारी के संग्राम-महोदधि में सुरक्षित है। जोधपुर का प्राचीन इतिहास अजितोदय, अभयोदय जैसे काव्यों से ही पूरा हो सका है। २०वीं सदी तक ऐसे काव्य लिखे जाते रहे हैं। नगर वर्णन के काव्य भी श्री कृष्णराम भट्ट (जयपुर विलास) और भट्ट मथुरानाथ शास्त्री (जयपुर वैभव) के काव्यों में मिलते हैं।

यह तो हुई प्राचीन काव्यों की बात। २०वीं सदी में भी राजस्थान की प्रत्येक रियासत में इतने उत्कृष्ट कवि हुए हैं कि उनके विवरण के लिए एक पूरा ग्रंथ चाहिए। पृथक् पृथक् रियासतों की संस्कृत साधना पर शोध हुए हैं, ग्रन्थ भी लिखे गए हैं।

जयपुर के राज्याश्रय ने तो सवाई जयसिंह के समय से लेकर अब तक कवियों की एक लम्बी शृंखला को पनपाया ही है। मेवाड, मारवाड, शेखावाटी, हाडौती और वागड, सभी क्षेत्रों में कवियों ने अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखाया है। उदयपुर में जिस प्रकार २०वीं सदी के प्रारम्भ में ही शीघ्र कवि नन्दकिशोर शास्त्री, रमानाथ शास्त्री, बलभद्र भट्ट, कण्ठमणि शास्त्री जैसे कवि हुए उसी प्रकार पिछले दिनों तक रामकृष्णोपाध्याय, गिरधरलाल और लक्ष्मीनारायण पुरोहित जैसे कवियों ने उत्कृष्ट काव्य रचना की। बीकानेर में विद्याधर शास्त्री, जोधपुर में जगदीश आचार्य, और नित्यानन्द शास्त्री, गोपीकृष्ण व्यास, मणिशंकर द्विवेदी आदि, नागौर के लक्ष्मण शास्त्री, चोपासनी के गोस्वामी हरिराय जिस प्रकार उल्लेखनीय हैं, उसी प्रकार शेखावाटी के मदन शर्मा, ''सुधाकर'', महावीर प्रसाद जोशी, नन्दलाल शर्मा (बबाई) और भगवानदत्त राकेश जैसे कवि उल्लेखनीय रहे हैं। डूंगरपुर के गणेशराम शर्मा और झालावाड के गिरिधर शर्मा नवरत्न और गिरधारी शास्त्री सुविदित हैं। हाडौती क्षेत्र के सदाशिव पाठक, नाथूराम शर्मा ''मधुकर'' जैसे अनेक कवि प्रकाशित हो चुके हैं। जयपुर में तो कवियों की एक सुदीर्घ परम्परा और संख्या है जिसमें मथुरानाथ भट्ट, हरि शास्त्री हरिकृष्ण गोस्वामी, सूर्यनारायण शर्मा, दीनानाथ त्रिवेदी जैसे कवियों के स्वर्गवास के बाद अब भी नारायण शास्त्री कांकर, पद्म शास्त्री, कृष्णलाल शर्मा, रामगोपाल शास्त्री राधाकृष्ण शास्त्री, कृष्णगोपाल, गिरिजा प्रसाद, नन्दकिशोर गौतम, हरिराम आचार्य जैसे अनेक नये पुराने कवि काव्य रचना में निरत हैं। भरतपुर के सम्पूर्णदत्त मिश्र भी रचनारत हैं। राजस्थान संस्कृत अकादमी

प्रतिवर्ष संस्कृत सर्जकों को माघ पुरस्कार आदि अनेक पुरस्कार देती है। ऐसे पुरस्कारप्राप्त विद्वानों की यहाँ अब विपुल संख्या हो गई है।

आधुनिक काल की यह विशेषता है कि इसमें प्राचीन शैली के स्तोत्र और महाकाव्य भी शामिल हैं, संस्कृत छन्दों की तरह हिन्दी छंदों और उर्दू गजलों में लिखी रचना भी और छंदोमुक्त नयी कविता भी। वर्ण्य विषयों में जिस प्रकार भारतीय संस्कृति से सम्बन्धित विषय रहे हैं उसी प्रकार वर्तमान राजनीति, स्वतंत्रता संग्राम और देश-दशा पर भी कविताएं लिखी गई हैं। शुद्ध हास्य व्यंग्य की रचनाओं ने भी विषय को विविधता दी है।

गद्य–

राजस्थान में गद्य रचना का भी विशिष्ट इतिहास रहा है। २० वीं सदी के प्रारम्भ में अजमेर के शिवदत्त त्रिपाठी ने महाभारत कथा गद्य में लिखकर गद्य-भारत दो भागों में निकाला था जो उत्कृष्ट गद्य का नमूना था। उसके बाद मथुरानाथ शास्त्री भट्ट जैसे लेखकों ने विविध विधाओं में (जैसे निबंध, ललित निबंध, रूपक) गद्य रचना की। उसी शृंखला में हरिकृष्ण शास्त्री, गणेशराम शर्मा आदि आतें हैं। नवलकिशोर कांकर ने अनेक गद्य रचनाएं लिखकर गद्य-पद्य-सम्राट् की ख्याति अर्जित की है। इस प्रकार का गद्य यहां की पत्र पत्रिकाओं में प्रमुखतः प्रकाशित हुआ और ऐसे गद्य लेखकों में चन्द्रधर गुलेरी से लेकर सूर्यनारायण शर्मा और लक्ष्मीनाथ शास्त्री जैसे विद्वान तक गिनाये जा सकते हैं। लक्ष्मीनाथ शास्त्री पुरानी पीढ़ी के विद्वान थे जिन्होंने भारतेतिवृत्तसारः में भारत का इतिहास गद्यबद्ध किया था। आजकल भी व्यंग्य लेख, ललित निबंध आदि विधाओं में तथा पत्रकारिता से सम्बद्ध प्रकारों में लेखन हो रहा है। राजस्थान संस्कृत अकादमी ने आधुनिक संस्कृत निबंधों, कथाओं आदि के संकलन निकाले हैं। अनेक कथा-संग्रह, निबंध-संग्रह अलग से प्रकाशित हुए हैं।

कथा साहित्य–

१९वीं सदी के अन्तिम चरण से संस्कृत में उपन्यासों और कहानियों का जो लेखन प्रारम्भ हुआ उस सर्जना-यज्ञ में राजस्थान ने सर्वाधिक योगदान दिया। जयपुर

रियासत के एक पंडित जो काशी में बस गये थे (अम्बिकादत्त व्यास) का लिखा शिवराजविजय उल्लिखित किया जाता रहा ही है। उस समय की पत्र पत्रिकाओं में राजस्थान के मथुरानाथ शास्त्री, रमानाथ शास्त्री, भट्ट बलभद्र आदि लेखकों की कहानियाँ, उपन्यास छपने लगे थे। जयपुर से निकलने वाले मासिक संस्कृत रत्नाकर में ऐसा साहित्य विपुल परिमाण में निकला। सूर्यनारायण शास्त्री, मधुसूदन ओझा, गिरिधर शर्मा आदि पुराने पंडितों की कहानियाँ भी निकली। मथुरानाथ शास्त्री ने अनेक उपन्यासों और शतशः कहानियों में जो नया प्रयोग किया उन्होंने तो एक नये युग का ही सूत्रपात कर दिया। आज राजस्थान के कथा लेखकों में गणेशराम शर्मा (जिनका कथा संग्रह साहित्य अकादमी से प्रकाशित है) नवलकिशोर कांकर, नारायण कांकर, पद्म शास्त्री, कलानाथ शास्त्री, मोहनलाल पांडेय, हरिकृष्ण गोस्वामी आदि के तो उपन्यास या कथा संग्रह प्रकाशित भी हो चुके हैं। साहित्य अकादमी ने राजस्थान के आधुनिक कथा लेखकों (१३) की कहानियों का एक संकलन निकाला था। उसके बाद अनेक कथा संग्रह निकले हैं। इसके अतिरिक्त पत्र पत्रिकाओं में राजस्थान के कहानी लेखकों की बड़ी संख्या देखी जा सकती है। इनमें कुछ नाम हैं देवीदत्त चतुर्वेदी, शिवदत्त चतुर्वेदी, धर्मेन्द्रनाथ आचार्य, शिवसागर त्रिपाठी, नन्दकिशोर गौतम, मोहनलाल पांडेय, शिवसागर त्रिपाठी, वैकुंठनाथ शास्त्री आदि।

नाटक–

संस्कृत नाटक लेखन का इतिहास राजस्थान में बहुत पुराना है। अजमेर के सोमेश्वर (११५३) (विजयश्री और ललित–विग्रहराज के लेखक) जैसे लेखकों और जयपुर में मोहन कवि(दमन मंजरी १६००), कृष्णदत्त (रुक्मिणी–माधव), हरिजीवन मिश्र (पलाडुमण्डनम्, घृतकुल्या) और विश्वनाथ रानडे(श्रृंगारवापिका १६७६), जैसे लेखकों के नाटक ग्रंथागारों में पाये जाते हैं। यह क्रम २०वीं सदी तक चलता आ रहा है। जयपुर के गोपीनाथ दाधीच ने अनेक नाटक लिखे थे, कुछ प्रकाशित हुए हैं जैसे माधव–स्वातंत्र्यम्। गोविन्द प्रसाद दाधीच ने बीसों नाटक लिखे हैं। हरिकृष्ण शास्त्री के नाटक भी प्रकाशित हो चुके हैं (आदर्शौदार्यम्)। नारायण कांकर का एकांकी संग्रह साहित्य

अकादमी से प्रकाशित हो चुका है। विद्याधर शास्त्री, गणेशराम शर्मा, कलानाथ शास्त्री, हरिराम आचार्य, वैकुंठनाथ शास्त्री, मेवाराम कटारा, शिवसागर त्रिपाठी आदि साहित्यकारों ने अन्य विधाओं के साथ साथ अपनी नाटक प्रतिभा से भी चमत्कार दिखाया है जिनके नाटक संग्रह प्रकाशित भी हुए हैं।

संस्कृत पत्रकारिता–

प्रत्येक मानव प्रायः समसामयिक स्थिति, परिवर्तन एवं साहित्यिक गतिविधियों का ज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा रखता है। शिलालेख–ताम्रपत्र– भित्तिलेखों, दूतचर, भाट प्रभृति सूचनाओं एवं संवादों की आधुनिक पत्रकारिता की स्वर्णिम पृष्ठभूमि में प्रख्यात कविवर्ग की निसर्गरम्या का परम मधुमय उत्स क्रमशः भारत की पुण्यभूमि में समुत्पन्न सहृदय साहित्यानुरागियों द्वारा पीयूष प्रांजलता से सुधासिक्त कर निःशेष विश्व के रसतृषातुरों के परितोषार्थ एक उल्लेखनीय कड़ी है। संस्कृत पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन १९वीं शताब्दी के मध्य भाग से पूर्व ही प्रारम्भ होकर क्षिप्र ही देशभर में इनका लब्धप्रतिष्ठ स्थान हो गया। १८३२ ई. में बंगाल की रॉयल एशियाटिक सोसायटी की शोध पत्रिका प्रकाशित हुई, जिसमें अंग्रेजी एवं संस्कृत दोनों भाषाओं के लेख होते थे किन्तु देववाणी की सर्वप्रथम पत्रिका १८६६ ई. में वाराणसी से 'काशीविद्या सुधानिधि'' पत्रिका प्रकाशित हुई तथा १८९३ में बंगाल से 'संस्कृत–चन्द्रिका' नामक पत्रिकाएं प्रकाशित हुईं। स्वातन्त्र्योत्तर भारत में नैक पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा है।

संस्कृत पत्रकारिता के क्षेत्र में राजस्थान का अवदान विशेषतः अंकनीय है। राजस्थान में सर्वप्रथम पं. श्री बालचन्द्र शास्त्री के संपादकत्व में 'संस्कृत–रत्नाकर' नामक मासिक पत्र का श्रीगणेश १९०४ में प्रारम्भ होकर १९४९ तक चला। उक्त पत्रिका का मध्य में अवसान भी हुआ तथा भिन्न–भिन्न स्थानों से १९४९ तक प्रकाशन भी हुआ। कालान्तर में यही पत्र अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य–सम्मेलन का मुखपत्र बना। 'भारती' नामक मासिक संस्कृत पत्र बाबा साहब आप्टे के संस्थापकत्व में १९५० से प्रारम्भ हुआ, जो मासिक पत्र के रूप में आज समूचे देश में अपनी वैविध्यमयी सामग्री के कारण ख्यातनाम है। पत्रिका में नियमित रुप से मासावतरणम्, शब्द–वारिधि,

नारी–स्तम्भ, पुस्तक समीक्षा, संस्कृत–समाचाराः एवं संस्कृत कथा स्तम्भ आदि का प्रकाशन किया जा रहा है। संप्रति पत्रिका के प्रधान संपादक बहुभाषाविद् व राष्ट्रपति सम्मानित मनीषी प्रवर देवर्षि कलानाथ जी शास्त्री हैं तथा संपादक संस्कृत अकादमी के पूर्व निदेशक पं. श्री प्यारेमोहन शर्मा हैं। संस्कृत का यह उज्ज्वल मौक्तिक न जाने कितन विदग्ध हृदयों का कंठहार बना है। पत्रिका के आरम्भिक क्षेत्र में कवि शिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री, पं. श्री वृद्धिचन्द्र शास्त्री, आशुकवि हरि शास्त्री, पं. दीनानाथ त्रिवेदी एवं पं. जगदीश चन्द्र शर्मा का योगदान काफी प्रशस्य व वर्ण्य रहा है। जयपुर से ही १९६४ में 'कल्याणी' व संस्कृतसुधा पत्रिकाओं का भी काफी स्वागत हुआ। किन्तु आर्थिक संकट के कारण बन्द कर दी गई। संस्कृत शिक्षा निदेशालय की ''वैजयन्ती'' पत्रिका के भी कुछ अंक छपे थे। संस्कृत–पत्रकारिता के सुदीर्घ इतिहास में 'स्वर–मंगला' पत्रिका का शुभारम्भ राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर से १९७६ में त्रैमासिक पत्रिका के रूप में हुआ, जो संप्रति राजस्थान संस्कृत अकादमी जयपुर से नियमित प्रकाशित हो रही है। राजस्थान ग्रामोत्थान एवं संस्कृत अनुसंधान संस्थान, शाहपुरा जयपुर से मुखपत्र के रूप में संस्थान निदेशक, डॉ. शंकरलाल शास्त्री के संपादकत्व में त्रैमासिक संस्कृत-हिन्दी शोध पत्रिका ''साहित्य-मंदाकिनी'' का निरन्तर स्तरीय प्रकाशन किया जा रहा है। इस शोध पत्रिका में टैगोर विशेषांक, संस्कृत साहित्य में नारी, दीपोत्सव विशेषांक जैसे कई स्तरीय प्रकाशन प्रकाशित किए गए हैं जिनमें देश के प्रख्यात साहित्यकारों, भूतपूर्व कुलपतियों एवं कुलपतियों तथा शिक्षाविदों के शोध लेख प्रकाशित किए गए। इसी प्रकार दैनिक पत्रों में राजस्थान–पत्रिका में 'संस्कृत–दीर्घा' नाम से देवर्षि कलानाथ शास्त्री ने सीरीज निकाली थी, जो काफी चर्चित व लोकप्रिय रही। इस प्रकार कहा जा सकता है कि राजस्थान की संस्कृत सम्पदा को संरक्षित एवं विकसित करने में पत्र–पत्रिकाओं का महनीय योगदान है।

राजस्थान में संस्कृत प्रसारण सेवा–

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में वृद्ध–वृन्द से लेकर युवा–वर्ग तक का टी.वी. धारावाहिक (छोटे पर्दे एवं बड़े पर्दे) के प्रति रुचि बढ़ने लगी है। आज का समाज जैसा परेद पर

देखता है वैसा ही वह जीवन में करने को उद्यत होता है। इसी का परिणाम है कि छोटे पर्दे पर दिखाया गया धारावाहिक 'रामायण' एवं 'महाभारत' को देखकर 'माताश्री', 'पिताश्री' एवं 'मामाश्री' जैसे कर्णप्रिय सभ्य शब्दों का स्वागत हुआ। इसी प्रकार कुछ समय पूर्व ''कौन बनेगा करोड़पति'' जैसे धारावाहिक को देखकर लोग संस्कृत ग्रंथों को टटोलने लगे तथा अपना ज्ञानवर्धन करने लगे थे। इसी श्रृंखला में संस्कृत के क्षेत्र में बड़े परदे पर अपना करिश्मा दिखाने वाली संस्कृत की सर्वप्रथम फिल्म ''आदि शंकराचार्य'' बनी थी। जो तत्कालीन रूप में काफी चिर चर्चित रही एवं एक दो स्थानों से बड़े पुरस्कार भी मिले। राजस्थान की राजधानी गुलाबी नगरी में अप्रैल १९५५ में आल इण्डिया रेडियो,जयपुर आकाशवाणी केन्द्र स्थापित हुआ। तत्पश्चात् राजस्थान के विभिन्न मण्डलों यथा बीकानेर १९६३ में, जोधपुर सन् १९६५ में, उदयपुर १९६७ में, सूरतगढ़ १९८१, कोटा १९८७ तथा अलवर में १९९१ के साथ ही चूरू, बांसवाडा, एवं सवाईमाधोपुर में भी आकाशवाणी केन्द्र संचालित हैं। जयपुर आकाशवाणी की स्थापना के पश्चात् 'कविशिरोमणि भट्ट मथुरानाथ शास्त्री ने भवभूति के उत्तरराम चरित नाटक तथा प्रति सप्ताह १५ मिनट की प्रसारण सेवा संस्कृत भाषा के लिए आरक्षित थी। तभी से 'देववाणी' एवं वर्तमान में प्रति सप्ताह ''सौरभ'' नाम से संस्कृत–कार्यक्रम का प्रसारण किया जा रहा है। उस समय म.म.पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, भट्ट मथुरानाथ शास्त्री एवं पं. वृद्धिचन्द्र शास्त्री जैसे विद्वानों की रिकार्डिंग आवाज आज भी दिल्ली में सुरक्षित है। मौलिक ध्वनि–नाट्य विधा के तहत स्व. भट्ट मथुरानाथ शास्त्री द्वारा प्रसारित 'मञ्जुला' नामक नाट्य का प्रसारण किया गया। संस्कृत के नामी सितारे देवर्षि कलानाथ शास्त्री द्वारा रचित चित्तौड़सिंहः, पृथ्वीराजविजयम्, कर्मक्षेत्रे, महाभिनिष्क्रमणम्, रुक्मिणी, विक्रमादित्य, भरत एवं विरहिणी रचनाओं का नियमित जयपुर आकाशवाणी केन्द्र से प्रसारण किया गया जिसका परिणाम रहा–संस्कृतानुरागियों का रेडियो की तरफ रुझान। इसी क्रम में गङ्गाधर द्विवेदी प्रणीत 'मृगाङ्कावली' भर्तृहरि–निर्वेदाख्यमैतिहासिकं तथा महामन्त्रिणश्चाणक्यस्य आदि उल्लेखनीय प्रसारित रचनाए हैं। डॉ. प्रभाकर शास्त्री प्रणीत–शङ्कराचार्य शीर्षक ध्वनिरुपक एवं माघ रचनाएं प्रमुख हैं। डॉ. हरिराम आचार्य विरचित 'पूर्व शाकुन्तलम्' रचना भी उल्लेखनीय है जो हंसा प्रकाशन, जयपुर से

प्रकाशित एवं अकादमी के हरिजीवन मिश्र पुरस्कार से पुरस्कृत है। इसी प्रकार डॉ. पुरुषोत्तम लाल भार्गव द्वारा कुमारसंभव के पंचम सर्ग पर आधारित नाट्यरूप में प्रस्तुति एवं पं. दुर्गादत्त मैथिल द्वारा पाणिनि जीवन पर आधारित प्रस्तुति अंकनीय कही जा सकती है। जयपुर आकाशवाणी केन्द्र की तरह ही राजस्थान के अन्य केन्द्रों से भी संस्कृत कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। आकाशवाणी के योगदान की तरह ही जयपुर दूरदर्शन का अवदान भी विस्मृत नहीं किया जा सकता। सन् १९८७ में राजस्थान की राजधानी जयपुर के अन्तर्गत झालाना डूँगरी में जयपुर दूरदर्शन केन्द्र स्थापित किया गया तब से लेकर अब तक ''अक्षरा'' नाम से माह में एक बार संस्कृत माध्यम से कभी संगोष्ठी रूप में तो कभी परिचर्चा तथा काव्यपाठ एवं गीत एवं प्रश्नोत्तर रूप में कार्यक्रम प्रसारित होते रहते हैं। दूरदर्शन के दिल्ली केन्द्र से ''शूद्रककृत 'मृच्छकटिक' नाटक का प्रसारण किया गया जिसमें वसन्त सेना के स्थान पर मुनमुन सेन अभिनेत्री के रूप में तथा चारुदत्त के स्थान पर के.के. रैनाइल्ल अभिनेता के रूप में रहे। इसी तरह 'गीत गोविन्द' नामक नृत्य नाटिका का राष्ट्रीय धारावाहिक प्रसारण सोलह खण्डों में प्रसारित किया गया है जो काफी कर्णप्रिय एवं लोकप्रिय रूप में जाना गया। इसी प्रकार व्यास बालाबक्ष शोध संस्थान, जयपुर के अध्यक्ष संस्कृत विद्वान् आचार्य उमेश शास्त्री द्वारा उत्तर भारत की सर्वप्रथम संस्कृत फिल्म 'मुद्राराक्षसम्' बनाई गई है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि संस्कृत प्रसारण सेवा के क्षेत्र में राजस्थान का अवदान प्रशस्य है जिससे प्रभावित होकर आज का युवा समाज सुसभ्य एवं सुसंस्कृत हो सकेगा।

राजस्थान के प्रमुख संस्कृत कृतिकार : (संक्षिप्त नामोल्लेख)

'वाराणसीं जयपत्तनं वा' उक्ति के अनुसार जयपुर नगरी वैविध्य के रूप में वाराणसी की समता रखता है। स्वनामधन्य जयपुर नगर संस्थापक सवाई जयसिंह द्वितीय (१ जनवरी १७०० ई.) का नाम संस्कृत जगत् के उदयकाल के रूप में परिगणनीय है। स्वयं सवाई जयसिंह जी संस्कृत व फारसी के शिखर मनीषी थे। महाराज सवाई जयसिंह ने ही सूर्य चन्द्र के ग्रहणों, ज्योतिष के नामी सितारों को बुलाकर तथा जर्मनी से फादर ऐड्रीज जैसे ज्योतिषियों को ससम्मान बुलाकर अरबियन् पसिर्यन और फ्रेंच आदि भाषाओं

में लिखे दुरुह ग्रन्थों को संस्कृत में अनूदित करवाकर संस्कृत–जगत् का उपकार किया है। जयपुर सहित ५ स्थानों पर ज्योतिष यन्त्रालय की स्थापना 'युक्लिड' की रेखागणित को अरबी से संस्कृत में अनूदित जैसे प्रमुख पक्षों से यह स्वयंसिद्ध है कि तत्कालीन राजा संस्कृत कृतिकारों का पूर्णतया सम्मान किया करते थे।

जयपुर नगरी को अपने वैदुष्य से उपकृत करने वाले पं. अम्बिकादत्त व्यास, पं. मधुसूदन ओझा, भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री, पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, श्रीकृष्णराम भट्ट, गोपीनाथ दाधीच, पर्वणीकर परिवार, आशुकवि हरि शास्त्री, 'राष्ट्रवेद' के रचयिता नवलकिशोर कांकर आदि जैसे कवियों का योगदान नितरां प्रशस्य है। जयपुर की संस्कृतसाहित्य को देन नामक विषय पर सर्वप्रथम डी. लिट् की उपाधि प्राप्त करने वाले डॉ. प्रभाकर शास्त्री ने जयपुर के मनीषियों का वैदुष्यपूर्ण योगदान रेखांकित किया है। 'जयपुर की संस्कृत परम्परा' ग्रन्थ भी यहाँ उट्टंकनीय है। इसी प्रकार 'मेवाड़ का संस्कृत साहित्य' विषय पर डॉ. चन्द्रशेखर पुरोहित, उदयपुर का शोध प्रबन्ध ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। इसी प्रकार शेखावाटी से डॉ. सुभाष शर्मा तथा अलवर, जोधपुर, अजमेर एवं कोटादि संभागों से भी विभिन्न काव्यकारों की रचनाएं उल्लेखनीय हैं। राजस्थान में पद्य, गद्य, नाट्य कहानी आदि विभिन्न विधाओं के कुछेक रचनाकारों एवं उनकी कृतियों का यहाँ नामोल्लेख करना उचित होगा। राजस्थान की पावन धरा काव्य–सृजन के क्षेत्र में सदैव ही उर्वरा रही है। विभिन्न वैदुष्यमण्डित विचक्षण मनीषियों ने संस्कृत साहित्य की अभूतपूर्व श्री वृद्धि की है।

''किं कवेस्तेन काव्येन किं काण्डेन धनुष्मतः'' अर्थात् कवि के उस काव्य से क्या लाभ जो भला पाठक के हृदय को झकझौर नहीं दे। यह कथन पूर्णरूप से इस संकलन में चरितार्थ होता है। १२वीं शताब्दी से लेकर अब तक संस्कृत महाकाव्य परम्परा अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है। हम यहाँ प्रमुख काव्यकारों तथा उनकी रचनाओं का संकेतमात्र कर रहे हैं। कृष्णानन्द विरचित 'सहृदयानन्द' (१५ सर्गात्मक) महाकाव्य, देवप्रभसूरिकृत १८ सर्गात्मक 'पाण्डवचरितम्' महाकाव्य, वीरनन्दी का १८ सर्गात्मक 'चन्द्रप्रभचरितम्' इसी प्रकार १४वीं शताब्दी में अभयदेवकृत 'जयन्तविजय,

चन्द्रप्रभसूरिकृत 'हम्मीरमहाकाव्य', गंगादेवी प्रणीत 'मधुराविषयम्' एवं माणिक्यचन्द्रकृत 'पार्श्वनाथ-चरितं' उल्लेखनीय रचनाएँ कही जा सकती हैं।

इसी प्रकार १५वीं शताब्दी के प्रमुख रचनाकारों में वामनभट्ट बाण विरचित 'रघुनाथचरितम्' (३० सर्गात्मक), चन्द्रचूडकृत 'कार्तवीर्यविजय', वामनभट्ट बाण प्रणीत 'नलाभ्युदय' उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। इसी क्रम में १६वीं शताब्दी में महाकवि कर्णपूर विरचित 'पारिजातहरण' महाकाव्य, चन्द्रशेखर कविकृत 'सुरजनचरितम्', नामक बीस सर्गात्मक महाकाव्य, स्वयम्भूनाथकृत 'कृष्णविलासं' तथा १७वीं शताब्दी में पण्डितराज जगन्नाथ की अनेक रचनाएँ, वैंकटेशप्रणीत 'रामचन्द्रोदय', राज चूड़ामणि दीक्षितकृत 'रुक्मिणी–कल्याणं' व 'शङ्कराभ्युदयं', नीलकण्ठ दीक्षित प्रणीत 'शिव– लीलार्णव', रामभद्र दीक्षित प्रणीत 'सहृदयानन्द', देवविमल मणिकृत 'हीर–सौभाग्यं' तथा इसके पश्चात् १८वीं शताब्दी की राम पाणिवादकृत 'विष्णुविलास' तथा राघवीय घनश्यामकृत 'अन्याय-देवशतकम्', विश्वेश्वर पाण्डेयकृत 'होलिका–शतकम्', परमेश्वरकृत 'श्रीरामवर्म महाराज चरितम्', पण्डित जगऽजीवनकृत'अजितोदय महाकाव्यम्' आदि रचनाओं का प्रणयन हुआ।

उन्नीसवीं शताब्दी से अद्यावधि तक सीताराम भट्ट पर्वणीकर ने पाँच महाकाव्यों की सर्जना की जो नलविलास महाकाव्य, नृपविलास महाकाव्य, राघवचरित्रम्, जयवंश महाकाव्य तथा लघुरघुकाव्य हैं। कविमल्ल हरिवल्लभ भट्टकृत जयनगरपंचरंगम्, श्रीकृष्ण भट्टकृत ईश्वरविलासम् तथा कृष्णराम भट्टकृत कच्छवंश महाकाव्य वर्ण्य रचनाएं हैं। स्वामी भगवदाचार्यकृत रामानन्द दिग्विजयम्, महात्मगांधिचरित्रम्, भारत पारिजातम्, पारिजातापहार २१ सर्गीय, पारिजात सौरभम् २१ सर्गात्मक, सूर्य नारायण शास्त्री प्रणीत मानववंश महाकाव्यम् १७ सर्गात्मक नित्यानन्द शर्मा प्रणीत रामचरिताब्धिरत्नम् १८ सर्ग, आचार्य ज्ञानसागरकृत दयोदयम् २८ सर्ग, मेधाव्रताचार्यकृत दयानन्ददिग्विजयम्, प्रभुदत्त शास्त्री प्रणीत गणपतिसम्भव महाकाव्यम्, शिवगोविन्द त्रिपाठीकृत गान्धिगौरवमहाकाव्यम्, विद्याधर शास्त्री प्रणीत हरनामामृतम्, विश्वमानवीयं, विद्याद्यरनीतिरत्नं, वैचित्र्यलहरी, डॉ. रमेशचन्द्र शुक्ल रचित सुगमरामायणम् १४ सर्गात्मक एवं श्रीकृष्णचरितम्, डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी सृजित सीतारामचरितम्, कवि शिरोमणि भट्ट मथुरानाथ शास्त्री विरचित जयपुर–वैभवम्, साहित्य–वैभवम् एवं गोविन्द–वैभवम् छत्रधर शर्मा कृत कुम्भरायचरितम् ११ सर्गीय,

रायसिंह दिग्विजयम् २३ सर्गीय, द्विजेन्द्रलाल शर्मा पुरकायस्थकृत महीमहम् १२ सर्गीय, काशीनाथ पाण्डेय 'चन्द्रमौलि' प्रणीत श्रीमज्जवाहरयशोविजयाख्यम्, गोपी कृष्णव्यास विरचित साम्बसम्भवाख्यं, गुलाबचन्द्र शर्मा 'पाटलेन्दुकृत' महारथी कर्ण चरितामृत महाकाव्यम्, श्री श्रीधर भास्कर 'वर्णेकर' रचित 'शिवराज्योदय महाकाव्यम्' रघुनन्दन शर्मा कृत तुलसी-महाकाव्यं, साधु शतकं', प्राकृत काश्मीर, डॉ. रसिक बिहारी जोशी प्रणीत मोहभङ्गम्, सत्य नारायण शास्त्री विरचित भारत दिग्दर्शनम्, आचार्य मधुकर शास्त्री प्रणीत महावीर सौरभम्, पथिककाव्यं, स्वप्नकाव्यं, गान्धिगाथा एवं मारुति लहरी, पद्म शास्त्री विरचित लेनिनामृतम्, भोलाशंकर व्यासकृत शक्तिजय महाकाव्यम् ११ सर्गीय, गोस्वामी हरिरायकृत जरासन्धवधमहाकाव्यं, रामदेव साहू प्रणीत रामदेव चरितम् एवं चित्तौड़–चूड़ामणि प्रमुख महाकाव्यों के रूप में परिगणनीय हैं

न केवल महाकाव्यों की बल्कि खण्डकाव्यों, गीतिकाव्यों तथा मुक्तक काव्यों का भी राजस्थान के संस्कृत साहित्य में अभूतपूर्व योगदान रहा है। इनमें मुख्य रूप से यमुनादत्त शास्त्री प्रणीत वीरतरंगरंगम्, चन्द्रधर शर्मा गुलेरीकृत शिवार्चनम्, स्वागताशीः कुसुमाञ्जलि, म.म. दुर्गाप्रसाद द्विवेदी रचित दशकण्ठवधं (चम्पूकाव्य), दुर्गापुष्पाञ्जलि, सौभाग्यशतकम्, रामप्रसाद शास्त्री विरचित विनयपद्यावली एवं श्री प्रबोध पद्यावली, गिरिधर शर्मा ''नवरत्न'' कृत श्री भवानी सिंह कारकरत्नम्, अमरसूक्ति सुधाकर नवरत्ननीतिः, गिरिधरसप्तशती, हरि शास्त्री प्रणीत वाणीलहरी, सुवर्णलक्ष्मी नक्षत्रमाला, महावीरप्रसाद जोशी प्रणीत प्रतापचरितं, प्रार्थना पुष्पाञ्जलि, गोस्वामी फाल्गुन भट्टकृत जयभारतादर्शकाव्यं, द्विजेन्द्र लाल शर्मा 'पुरकायस्थ' कृत ऋतुकौतुकाख्यं, गोपीकृष्ण व्यासकृत जयमल्लकीर्तिलता, श्री रामदवे कृत भृत्या–भरणं, मेघोपालम्भनं एवं राजलक्ष्मी स्वयंवरं काव्यं, डॉ. ब्रह्मानन्द शर्मा कृत तत्वशतकम्, डॉ. रसिक बिहारी जोशी द्वारा लिखित करुणाकटाक्षलहरी एवं सारस्वतं, शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदकृत चर्चामहाकाव्यम्, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद मिश्र कृत शृङ्गारकेयूरकम् एवं विरहिता, भारती पत्रिका के प्रधान सम्पादक देवर्षि कलानाथ शास्त्री प्रणीत संस्कृत कवितावल्लरी, शुकदेव शास्त्री प्रणीत वीणा के तार, डॉ. चन्द्र किशोर गोस्वामी प्रणीत भावनिर्झरी, पं. मोहनलाल पाण्डेयकृत पत्रदूतं एवं पद्मिनी, डॉ. सियाराम सक्सेना 'प्रवर' कृत ब्रजरजःप्रीतिः एवं नीतिमञ्जरी, शंकरलाल

शास्त्री प्रणीत 'संस्कृत कवि मञ्जरी', डॉ. हरिराम आचार्य कृत मधुच्छन्दा, पं. सम्पूर्णदत्त मिश्र कृत सूक्तिपञ्चामृतम् आदि नैक मौलिक काव्यों की सर्जना से संकृत–जगत् उपकृत हुआ है। वर्तमान में असंख्य रचनाएँ आर्थिक संकट या अन्य कारणों से आज हमारे समक्ष मुद्रित रूप में नहीं हैं। यदि ऐसे में विलुप्त होती रचनाओं को संजाने एवं संवारने का सारस्वत कार्य किया जाए तो निःसंदेह संस्कृत साहित्य अभिकोष में एक नया अध्याय जुड़ सकेगा। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि इस पद्य काव्यमयी स्रोतस्विनी से तथा संक्षिप्त सर्वेक्षण से संस्कृत के अध्येताओं एवं शोधार्थियों का जीवन उपकृत हो सकेगा एवं उनका जीवन रूपी मार्ग प्रशस्त हो सकेगा।

इसी प्रकार दृश्यकाव्य के अन्तर्गत प्रान्त के विभिन्न क्षेत्रों से मौलिक नाटकों व रूपकादि का लेखन–प्रकाशन होता रहा है। शृंखला की इसी कड़ी में विश्वेश्वरनाथ पाण्डेयकृत शृङ्गार–मञ्जरी, नामक सट्टक व नवमालिका नाटिका, कृष्णनाथ सार्वभौमकृत आनन्दलतिका नामक नाटिका, कृष्णदत्त जोशी प्रणीत सान्द्रकुतूहलप्रहसनं, अम्बिकादत्त व्यासकृत सामवतम्, धर्माधर्मकलं और मित्रालापः नामक तीन नाटक, गोपीनाथ दाधीचकृत माधवस्वातन्त्र्यम्, मेधाव्रताचार्यकृत सौन्दर्याख्य नाटक, भट्टश्री मथुरानाथ शास्त्री कृत मञ्जुला नामक आधुनिक रेडियो रूपक, गोविन्द्र प्रसाद दाधीच रचित बालशाकुन्तल नाटक, कृष्ण–सुदामा नाटक, हरिश्चन्द्र नाटक, श्रवणकुमारः नाटक एवं श्रेष्ठ शिष्योदाहरण नाटक उल्लेखनीय हैं।

इसी प्रकार विद्याधर शास्त्रीकृत नागानन्द नाटक, डॉ. रमेशचन्द्र शुक्लकृत अभिनव हनुमन्नाटक, मदन शर्मा 'सुधाकर' रचित दूतमाधवम्, पिनाकमञ्जनं एवं कर्णप्राभृतं, सत्यनारायण शर्माकृत मेवाड़–मार्तण्ड एवं एकाङ्कि काव्य, डॉ. नारायण शास्त्री काङ्करकृत एकाङ्किसंस्कृत नवरत्न मञ्जूषा, वैकुण्ठनाथ शास्त्री सृजित हम्मीरोत्सर्ग नाटक, डॉ. शिवसागर त्रिपाठी का प्राणाहुतिः, डॉ. चन्द्रकिशोर गोस्वामी का पृथ्वीराजजयम् एवं दानवीर कर्ण वर्ण्य रचनाएं हैं। इसी तरह रेडियो रूपकों व अन्य नाटकों का भी काफी मौलिक सर्जन हुआ है। कुछेक रचनाएं हैं–देवर्षि कलानाथ शास्त्री प्रणीत संस्कृत-नाट्य-वल्लरी (आठ रेडियोरूपकों का संकलन), डॉ. चन्द्रकिशोर गोस्वामी का मालतीमाधवम्,

डॉ. प्रभाकर शास्त्री का महाकविर्माघः, जगद्गुरुः श्री शङ्कराचार्य एवं बिल्हण चरितम्, रविकान्त चौधरीकृत हम्मीरप्रतिज्ञा डॉ. हरिराम आचार्यकृत पूर्वशाकुन्तलम्, गंगाधर द्विवेदी प्रणीत मृगाङ्कांवलि, श्रीविश्वनाथकृत कलिकौतुकम्, पं. पद्म शास्त्री रचित बंगलादेश विजयः आचार्य चतुर्भुज शास्त्रीकृत मणिभद्रशरणम्, श्री मेवाराम कटारा प्रणीत समर्पणम् पथिक स्वातन्त्र्य पथस्य निष्क्रिय एवं डॉ. देव शर्मा वेदालंकारकृत राज्याभिषेक प्रमुख रूपक रचनाएं हैं।

इसी प्रकार उपन्यास, कहानी एवं कथा विधा को भी इस धरा के नैक सर्जकों ने गौरवान्वित किया है। यथा–पं. अम्बिकादत्त व्यास, (शिवराज विजय), मेधाव्रताचार्य (कुमुदिनीचन्द्रः) श्री निवासाचार्य (चन्द्रमहीपतिः), भट्ट मथुरानाथ शास्त्री (आदर्शरमणी सहित लगभग ३८ कहानियाँ), देवर्षि कलानाथ शास्त्री (जीवनस्य पृष्ठद्वयं एवं कथानक वल्ली), पं. नवलकिशोर कांकर(यात्राविलासम्) पद्म शास्त्री (विश्वकथाशतकम्), पं. मोहनलाल पाण्डेय (पद्मिनी), रसकपूर, शंकरलाल शास्त्री (कथा–मन्दाकिनी), विभिन्न भाषाओं की कथाओं का संस्कृत अनुवाद) पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी (पितुरुपदेशः व कश्चित् कविः) पं. गणेशराम शर्मा (संस्कृत कथा कुञ्जम्), डॉ. प्रभाकर शास्त्री (आत्म वेदना), सूर्यनारायण शास्त्री (दुर्लभदाम्पत्यम्), डॉ. नन्दकिशोर शर्मा (मधुरमिलनम्) डॉ. रामशरण त्रिपाठी, हृषीकेश भट्टाचार्य, स्वामी लक्ष्मण शास्त्री, गिरिधारीलाल व्यास, श्री गिरिराज शास्त्री, दुर्गादत्त झा, डॉ. नारायण शास्त्री कांकर, शिवप्रसाद शास्त्री, हरिकृष्ण गोस्वामी, विश्वेश्वरनाथ पाण्डेय, कृष्णदत्त जोशी, भोलानाथ शुक्ल, विद्याधर शास्त्री, नवलकिशोर कांकर, वैद्य शंकर लाल शर्मा, डॉ. शंकर लाल शास्त्री, उमेश शास्त्री, पं. माणिक्यलाल शास्त्री व शिवदत्त त्रिपाठी जैसे रचनाकारों के साथ ही अन्य भी ऐसे कथाकार एवं उपन्यासकार हैं, जिनका राजस्थान के संस्कृत साहित्य संवर्धन में अभूतपूर्व योगदान रहा है।

यह तो सर्वविदित तथ्य है कि इस प्रकार के विवरण कभी अपने आप में सर्वांगीण और अन्तिम दस्तावेज होने का दावा नहीं किया जा सकता। यद्यपि राजस्थान का संस्कृत–सर्जना समाज काफी विपुल एवं व्यापक है, साथ ही ऐसे नैक कवियों का योगदान रहा है, जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से संस्कृत समाज को नवदिशा दी है।

पं. अम्बिकादत्त व्यास

(1858 ई. – 1900 ई.)

इस अध्याय में पौराणिक आख्यान छत्रपति शिवाजी पर संस्कृत में रचा शिवराजविजय उपन्यास तथा पं. अम्बिकादत्त व्यास ने 51 रचनाएं रची किन्तु वर्तमान में 14 संस्कृत में उपलब्ध हैं। इन्होंने कई भक्तिपरक व इतिहासपरक भरपूर संस्कृत और हिन्दी में मौलिक सृजन किया है।

संस्कृत साहित्य के स्वर्णिम इतिहास में 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में **'गद्य कवीनां निकषं वदन्ति'** उक्ति को सार्थक करने वाले संस्कृत मेरूरूपी नवयुग का स्वागत स्वमतिपाटवता से संस्कृत गद्य को मूर्तरूप देने वाले अपनी सशक्त एवं ओजस्विनी लेखनी के कारण संस्कृत-जगत् में विद्यारूपी वीणा के झंकृत तारों से तरित 'किं कवेस्तेन काव्येन किं काण्डेन धनुष्मतः।' अर्थात् कवि के उस काव्य से क्या लाभ जो भला पाठक के हृदय को झकझोर नहीं दे? उक्तोक्ति की अद्यतन पालना करने वाले सरस्वती के वरदपुत्र एवं लघुकाशी रूपी उपमा को संरक्षित एवं सुरक्षितार्थ कटिबद्ध रहने वाले गद्य-सम्राट् पं. अम्बिकादत्त व्यास का जन्म ऐसी द्वन्द्वात्मक वेला में हुआ जहाँ एक ओर अंग्रेजों का बोलबाला था तो वहीं दूसरी ओर एकता और अखण्डता का परिचायक तथा स्वर्णिम चटका का प्रतिमान भारतदेश के सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक एवं साहित्यिक जीवन में एक नवक्रान्ति की चिंगारी उत्पन्न हो बदलावपन का द्वार खटखटाया जाने लगा था। ऐसे में सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी राष्ट्रकवि पं. व्यास के जीवन में उन भावों का प्रस्फुटन स्वाभाविक था। भारतीय संस्कृति के उद्गाता, उसके महामहिम स्वरूप के प्रकाशक तथा उसकी सनातन दिव्य परम्परा के संवाहक पं. अम्बिकादत्त व्यास का जन्म गुलाबी नगरी जयपुर के सिलावटों के मौहल्ले में अपने ननिहाल में चैत्रशुक्ला अष्टमी संवत् 1915 (1858ई.) में हुआ था। आपके पूज्य पिताश्री स्व. पं. दुर्गादत्त व्यास ने ही आपका नामकरण 'अम्बिकादत्त' किया। आपके

पूर्वज पाराशर गोत्रीय तथा जयपुर के समीपस्थ भानपुर नामक ग्राम में रहते थे। आपके पितामह पं. राजाराम जी पर्यटक भी थे। पं. अम्बिकादत्त व्यास की माताश्री जयपुर के सिलावटों के मौहल्ले की रहने वाली थीं।

आपकी आरम्भिक शिक्षा-दीक्षा अपनी गृहवाटिका में ही सुसम्पन्न हुई। आपके पिताश्री के कथावाचन विद्या में पारंगत होने के कारण आप भी वक्तृत्व कौशल एवं श्लोक रचना में निष्णात हो गये। इसी कारण आपका नाम 'व्यास' पड़ा। अपने प्रखर ज्ञानालोक से आलोकित करने वाला यह होनहार बालक 24 मिनट में सौ श्लोकों की रचनाकर पण्डित-समुदाय को आश्चय में डाल दिया। फलतः आपको **'घटिका-शतक'** या शतावधानी से उपमित किया।

भारतेन्दु जैसी विद्वत् मण्डली ने भी आपको 'सुकवि' उपाधि से अलंकृत किया। सन् 1874 में माताश्री एवं छः वर्ष के पश्चात् पिताश्री का निधन हो गया। पं. व्यास के हृदय में शोक सन्तप्तता का अवसान यहीं नहीं होता इसी दुखद वेला में आपके अनुज एवं आदरणीया भाभीजी का भी असामयिक निधन हो गया। दुर्दैव की घोर विडम्बनाओं एवं क्रूर काल की चपेट में रहते हुए ही आपके कुशल मार्गदर्शक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जैसे साहित्यकार भी ब्रह्मलीन हो गये।

'चक्रारपंक्तिरिवगच्छति भाग्यपंक्तिः' बिन्दु को अपने मानस पटल पर अंकित कर दुःखरूपी कालीरात्रि के बाद सुख का सवेरा अवश्य होगा। इसी आशा पर रहते हुए अध्ययन, अध्यापन, भाषण और लेखन में व्यस्त रहते थे। सन् 1880 में गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेज से आपने 'साहित्याचार्य' की उपाधि प्राप्त कर जीविकोपार्जनार्थ सर्वप्रथम मधुवनी (दरभंगा) संस्कृत विद्यालय में सन् 1886 में मुजफ्फरपुर संस्कृत विद्यालय में, सन् 1887 में भागलपुर सन् 1896 में छपरा जिला स्कूल में तथा जीवन के अन्तिम पड़ाव में सन् 1899 में पटना कॉलेज में प्रोफेसर पद पर नियुक्त हुए किन्तु उदर रोग के कारण उक्त कॉलेज को बहुत कम समय देकर देववाणी की सारस्वत सेवा की।

सामवतनाटक में पं. व्यास ने अपना परिचय इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

''जातो जयपुरनगरे वाराणस्यां तथा कलितविद्यः।
सत्वरकवितासविता गौडः कोऽप्यम्बिकादत्तः।।''

पं. व्यास सङ्गीत, वैद्यक, ज्योतिष, रेखागणित, साङ्गवेद, इतिहास, दर्शन, सांख्य-तर्क, रत्नविज्ञान, व्याकरण एवं अश्वारोहण विज्ञान के साथ साथ ही संस्कृत, बंगला, हिन्दी, अंग्रेजी एवं उर्दू के भी ज्ञाता थे।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी पं. अम्बिकादत्त व्यास हमारे समक्ष नैकरूपों में विद्यमान हैं। यथा– उपन्यासकार, अनुवादक, राष्ट्र-भक्त, गद्य-विधा की नव शैली के सूत्रधार, सम्पादक, दर्शन-वेत्ता, सुरवाणी समर्चक, रसिकहृदय, संस्कृत-संस्कृति के उन्नायक एवं राजभक्त आदि। इन्हें न केवल गद्य-सम्राट् प्रत्युत् **भारत-भूषण, भारत-रत्न, भारत-भास्कर घटिकाशतक शतावधानी, बिहारभूषण, धर्माचार्य, एवं महामहोपदेशक** जैसे रूपों में भी जाना जाता है। आपने 'संस्कृत-संजीवनी' नामक संस्था की स्थापना कर देववाणी के प्रचार-प्रसारार्थ अलख जगाया।

व्यास जी ने स्वयं 'निजवृत्तान्त' में अपने जीवन की घटनाओं का सविस्तार परिचय दिया है साथ ही 1901 की 'सरस्वती' में भी व्यासजी का जीवन परिचय छपा था।

19 नवम्बर 1900 ई. तक अर्थात् तकरीबन 41 वर्ष की आयु तक इस आदर्श मनीषी ने अपनी सशक्त लेखनी के प्रभाव से इस भारत-भू-भाग को आलोकित करते हुए अपने प्रखर वैदुष्य का परिचय दिया। आपने न केवल संस्कृत बल्कि हिन्दी, बंगला एवं उर्दू भाषाओं में मौलिक सर्जन किया। गद्यकाव्य, पद्यकाव्य, महाकाव्य, दृश्यकाव्य, मुक्तक आदि विभिन्न विधाओं में इनकी रचनाएँ साहित्य, विज्ञान, कौतुक, उपन्यास, यात्रा एवं दर्शन आदि अनेक विषयों का स्पर्श करती हैं। व्यास जी की लगभग 80 रचनाओं में 'शिवराजविजय' (उपन्यास), सामवतम् (नाटक), गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्, अबोधनिवारण तथा 'बिहारी विहार' (हिन्दी काव्य), प्रमुख हैं। 22 वर्षीय वयः में सृजित 'सामवतम्' नाटक भाषा, भाव और वर्ण्य की दृष्टि से काफी प्रशस्य है।

अभिनवबाण पं. व्यास के युग में नैक भारतीय भाषाओं में उपन्यासों की आँधी सी आ गई थीं। साहित्य-लेखन यात्रा के क्रम में उपन्यास प्रायः गद्य-विधा में ही लिखे जाया करते हैं। हिन्दुओं पर यवनों द्वारा निर्मम अत्याचार किए जा रहे थे साथ ही हिन्दू-धर्म से इस्लाम धर्म का चोली-जामा हटात् से पहनाया जा रहा था। हिन्दू धर्म के प्रतीक

बड़े-बड़े मंदिरों को तोड़कर मस्जिदों का निर्माण किया जाने लगा था। धार्मिक ग्रंथों को जलाकर बेगमों के हरमों में पानी गरम किया जाता था। हिन्दू-बालाओं एवं महिलाओं का जीवन असुरक्षित था। ऐसी दुःसहवेला में पं. व्यास ने छत्रपति शिवाजी जैसे आदर्श नायक पर आधारित 'शिवराजविजय' नामक अमर उत्कृष्ट गद्यकाव्य जैसे उपन्यास की सर्जना कर संस्कृत जगत् को उपकृत किया है।

पं. व्यास का कृतित्व :

अपनी आन-बान और शान के लिए सुविख्यात राजस्थान की यह धरा वीर-प्रसवित्री ही नहीं प्रत्युत् भीनमाल (राज.) में जन्में माघ अपरा काशी में जन्मे पं. व्यास, भट्ट मथुरानाथ शास्त्री जैसे महान् साहित्यकारों की जन्मदात्री के साथ ही ज्ञान-गाम्भीर्य एवं सारस्वत साधना के लिए विश्वविश्रुत है। **'क्षणे क्षणे यन्नावतामुपैति तदैव रूपं रमणीयतायाः'** उक्ति की यथार्थता ऐसे महाकवियों के कृतित्व के सम्बन्ध में ध्यातव्य एवं अनुभवनीय है।

जैसा कि कहा जाता है– **'रचनाकारों का कृतित्व ही उनके भव्य व्यक्तित्व का आइना होता है।'**

अभिनव बाण के रूप में ख्यातनाम पं. अम्बिकादत्त व्यास अपने मौलिक सृजन नैपुण्य के कारण संस्कृत एवं हिन्दी जगत् के जाजवल्यमान मार्तण्ड हैं। यदि हम इनके कृतित्व पक्ष पर विश्लेषण करें तो यह स्वतः सुस्पष्ट हो जाएगा कि पं. व्यास की 91 रचनाएँ विशेषतः उल्लेखनीय हैं किन्तु दुर्भाग्यवश आज 14 संस्कृत में, हिन्दी भाषा में 64 रचनाएं लिखीं, उनमें से 38 ही उपलब्ध हो पाई हैं।

इनकी समस्त रचनाओं को हम 12 धाराओं में विभक्त कर सकते हैं:–

1. भक्ति काव्य
2. धार्मिक साहित्य
3. उपन्यास साहित्य
4. रूपक साहित्य
5. दर्शन साहित्य
6. बहु आयामी साहित्य
7. हास्य एवं व्यंग्य साहित्य
8. सरस साहित्य
9. अंग्रेजी शासन प्रशंसापरक साहित्य
10. अलंकार शास्त्र साहित्य
11. कौतुक साहित्य
12. संस्कृत-शिक्षण साहित्य

1. भक्ति काव्य :

भारत-भास्कर पं. अम्बिकादत्त व्यास ने हिन्दी एवं संस्कृत में अनेक भक्ति काव्यों की सर्जना कर एक कुशल भक्त होने का भी बखूबी परिचय दिया है। पं. व्यास प्रायः सभी देवों के समक्ष नतमस्तक होकर राष्ट्र को परतन्त्रतारूपी पाश से मुक्त करवाने का अदम्य साहस उनके रग-रग में समाया था। पं. व्यास ईश्वर पूजा में पूर्ण विश्वास रखते थे। भक्ति-काव्य के क्षेत्र में उनका अवदान कितना प्रशस्य एवं वर्ण्य है। हिन्दी में आपने 'शिव-विवाह', 'घनश्याम-विनोद', 'कंसवध' तथा सुकवि सतसई नामक भक्ति साहित्य का प्रणयन किया। इसी प्रकार देववाणी संस्कृत में आपने 'गणेश-शतकम्', 'रत्न-पुराण', एवं सहस्रनाम-रामायण नामक स्तोत्र साहित्य की रचना की। अधिकांश रचनाएँ कालकवलित हो गईं तथा कुछेक रचनाएँ अपूर्ण होने एवं अनुपलब्ध होने के कारण वर्तमान में दुर्लभ एवं अप्राप्य हैं। कवि ने भक्तिभाव का संदेशात्मक वर्णन करते हुए लिखा है–

'चेत चेत रे जीव अजहुं तो चेत अभागे।
नारायण के चरननराखु निज तन मन पागे।।
हानि-लाभ सुख-दुःख हरष औ सोक एक कै....।'

पं. व्यास प्रणीत 'सुकवि सतसई' एवं 'सहस्रनाम रामायणम्' विशेषतः उल्लेखनीय एवं परिगणनीय कही जा सकती हैं। श्रीकृष्ण की बालक्रीडाओं पर आधारित 'सुकवि-सतसई' नामक रचना 700 पद्यों एवं 7 विभागों में विभक्त है, जो हिन्दी-जगत् में काफी चर्चित रही है। उक्त पद्य हिन्दी के 'दोहा' नामक छन्द में निबद्ध है। तुलसीकृत 'विनय-पत्रिका' पर केन्द्रित 'सहस्रनाम रामायणम्' स्तोत्र काव्य में मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्री रामचन्द्र के 1000 नामों के साथ ही इसे काण्डों में विभक्त कर लौकिक एवं अलौकिक गुणों के वाचक श्रीराम के गुणों का स्तुतिगान मुखरित हुआ है। संस्कृत साहित्य में यह समादरणीय ग्रन्थ के नाम से अभिहित किया जा सकता है। कवि ने मातृ-क्षीर के उफान की दशा का चित्रण करते हुए लिखा है–

'दूध चुअत कुच पै पर्यो आँसुन को जल जाय।
जनु उफान को रोकि के नैनन करो उपाय।।'

2. धार्मिक साहित्य :

पं. व्यासजी हिन्दू ब्राह्मणवाद के प्रबल पक्षधर थे। साथ ही उन्होंने आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज तथा तत्कालीन सामाजिक एवं धार्मिक सुधारवादी आन्दोलनों का सर्वदा विरोध प्रकट करते हुए 'खण्डनमण्डनात्मक साहित्य' का सूत्रपात किया। हिन्दी भाषा में 'अबोधनिवारण', 'पण्डित-प्रपंच', मानस-प्रशंसा, दोषग्राही और गुणग्राही, 'मूर्तिपूजा' नामक कृति में प्रश्नोत्तरात्मक-शैली में मूर्तिपूजा के वैशिष्ट्य का प्रतिपादन किया है।

अवतारवाद के प्रबल समर्थक पं. व्यास ने 261 अनुष्टुप् छन्दों के माध्यम से संस्कृत भाषा में निबद्ध कर 'अवतारमीमांसा' नामक ग्रंथ की सर्जना कर अनादि ब्रह्माजी की धरा पर अवतरण को शङ्का एवं समाधान की शैली में ठोस एवं साक्ष्यों प्रमाणों से गुम्फित किया है।

3. उपन्यास साहित्य :

अर्वाचीन संस्कृत गद्य साहित्य में नानारूपों में उपन्यास-विधा का अपना महत्त्व है। उपन्यास-विधा का गद्य के क्षेत्र में ऐसा प्रचलन एक नवविधा को जन्म देना है। देववाणी में प्रणीत उपन्यासों में 'शिवराजविजय' को प्रमुख एवं प्रथम श्रेणी में रखा जा सकता है। स्वरचित पंक्ति से ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार का वैशिष्ट्य स्वतः परिलक्षित हो जाता है– **''गद्यकारेषु व्यासः, गद्येषु विजयं तथा, द्योतेते काव्यगगने एतेसूर्येन्दुरिव।''**

इस नव विधा को लक्ष्य कर हिन्दी भाषा में उन्होंने आश्चर्य वृत्तान्त तथा स्वर्ग-सभा इसी प्रकार संस्कृत भाषा में 'शिवराजविजय' नामक उपन्यास जगजाहिर है।

हमारी भारतीय संस्कृति की विलुप्त होती विरासत को संजोये रखने को आधार बनाकर 'आश्चर्य-वृत्तान्त' नामक उपन्यास में जयपुर वास्तव्य सज्जन के गया तीर्थस्थल के पास में एक गहरे गढ्ढे में गिरने एवं वहाँ एक अंग्रेज भूगर्भ विद्वान् के साथ व्यासाश्रम, एवं शस्त्रागार आदि के अद्भुत दर्शन कर आश्चर्य प्रकट करने के कारण इस उपन्यास का नामकरण 'आश्चर्य-वृत्तान्त किया गया।

इसी प्रकार 'स्वर्ग-सभा' नामक उपन्यास में व्यंगात्मक शैली में स्वर्ग में सभी देवों के विभिन्न संकटों को लेकर ब्रह्माजी की अध्यक्षता में एक बैठक का आयोजन कर मर्मान्तक मनोभावों का ध्वन्यांकन किया है।

शिवराजविजयम्–

व्यासजी की कीर्ति-पताका को दोधूयमान करने वाला आधुनिक शैली में प्रणीत ऐतिहासिक उपन्यास 'शिवराजविजय' संस्कृत-जगत् की सर्वोत्कृष्ट प्रशस्यकृति है। गद्यकारों की श्रेणी में बाण, दण्डी एवं सुबन्धु के बाद पं. व्यास का नाम सर्वोपरि है। समस्त गुणों के पुञ्जीभूत एवं राष्ट्र के प्रमुख चिन्तक पं. व्यास के परिप्रेक्ष्य में शार्दूलविक्रीडित छन्द में किसी ने ठीक ही कहा है–

''का द्राक्षारसमाधुरी ! मधु च किं ! क्षीरं च किं साम्प्रतम्!
किं वाद्यक्वणनं च किं पिकवचः किं चापि योषित् स्मितम्!
राष्ट्रप्रेममयी महोज्जवलगुणा वीरानुरागात्मिका
दत्तव्यासकवेर्गिरा यदि शिवा श्रोत्रद्वयं गाहते।।''

पं. अम्बिकादत्त व्यास ने गद्य विधा के परिप्रेक्ष्य में उल्लेख करते हुए कहा है–

''गद्यैर्विद्योतितं यत् स्याद् गद्यकाव्यं तदीरितम्।
उपन्यासपदेनापि तदेव परिकथ्यते।
यथा कादम्बरी यद्वा शिवराजजयो मम।।''

कादम्बरी की परम्परा में विरचित अम्बिकादत्त व्यास का 'शिवराजविजय' नामक गद्य काव्य सर्वोत्कृष्ट उपन्यास है। व्यासजी द्वारा विरचित संस्कृत का यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है तथा पूर्णरूपेण मौलिक है। इसमें इतिहास और कल्पना, आदर्श और यथार्थ तथा अनुभव एवं कल्पना का सुमधुर गुम्फन है। इनके सभी पात्रों में चारित्रिक पक्ष को प्रमुखता से उभारा है। वीररस से ओतप्रोत इस उपन्यास में धीरोदात्त नामक छत्रपति शिवाजी की विजय-गाथा का बड़ा ही ओजस्वितापूर्ण वर्णन उट्टंकित किया गया है।

इस उपन्यास की दो स्वतन्त्रकथा धाराएँ समानान्तर प्रवाहमान होती हैं। एक कथा के नायक स्वयं छत्रपति शिवाजी हैं; तथा द्वितीय धारा के नायक रामसिंह हैं। परन्तु द्विधा विभक्त होते हुए भी वे कथानक इस काव्य कौशल के साथ परस्पर आबद्ध एवं संश्लिष्ट होकर चलते हैं जिससे कि ये न तो अलग-अलग प्रतीत होते हैं और न इनके विकास में कहीं भी शैथिल्य प्रकट हुआ है। इन कथानकों के माध्यम से पं. व्यास ने शिवाजी के जीवन की दस वर्ष (1657-67) तक की घटनाओं का सुन्दर चित्रांकन किया है।

इस उपन्यास के नायक वीरता की मूर्ति महाराजा शिवाजी हैं तथा प्रतिनायक मुगलों के अन्तिम सर्वाधिक शक्तिशाली सम्राट् औरंगजेब हैं। दोनों चरित्रों के युद्ध कौशल, नीतियों एवं कार्यकलापों के घात-प्रतिघातों से उपन्यास की कथा आगे बढ़ती है। इन दो प्रधान चरित्रों के अतिरिक्त यशवन्तसिंह, गौरसिंह, श्यामसिंह तथा अफजलखाँ आदि चरित्रों की रेखाएँ भी निपुणता के साथ उभारी गयी हैं। शिवराजविजय की कथावस्तु तीन विरामों में विभक्त है तथा प्रत्येक विराम में चार निश्वास हैं।

पं. अम्बिकादत्त व्यास प्रणीत 'शिवराजविजय' स्वातन्त्र्य की भावनाओं को प्रकाशित करने वाला उज्ज्वल कान्तिमान् सूर्य है। कवि का हृदय सदैव यवनों द्वारा किये जा रहे अत्याचार और जान-बूझकर हिन्दू धर्म को नष्ट करने के कारण उत्पीड़ित उद्वेलित और विह्वल था। जैसा कि उन्होंने लिखा है–

''केवलमार्यस्वभावानामार्यजनानां क्लेशनार्थमेव गोहिंसनम्, प्रतिमाखण्डनम्, दीनहीनसनातनधर्म-वैदिकधर्म-शरणानामेवास्माकं-जीवजीवंकरग्रहणं महतां कार्यं वा?

अंग्रेजों की मात्स्य नीति एवं दमन से प्रजा काफी आक्रोशित थी। ऐसे में परतन्त्र भारत की कसक तथा मुस्लिम बर्बरता का करुण स्पन्दन कवि की रचनाओं में स्पष्ट परिलक्षित होता है वेद एवं शास्त्रों का अनादर असहनीय होने पर कवि ने भारत की दुरवस्था का चित्रण करते हुए लिखा है–

'अद्य हि वेदा विच्छिद्य वीथीषु विक्षिप्यन्ते, धर्मशास्त्राणि उद्धूय धूमध्वजेषु ध्मायन्ते, पुराणानि पिष्ट्वा पानीयेषु पात्यन्ते, भाष्याणि भ्रंशयित्वा भ्राष्ट्रेषु भर्ज्यन्ते। क्वचिन्मन्दिराणि भिद्यन्ते, क्वचिद् दारा अपह्रियन्ते, क्वचिद् धनानि लुठ्यन्ते........।

प्रस्तुत उपन्यास में देश और सनातन धर्म की दुर्दशा देखकर कवि का हृदय उद्वेलित हो हा-हाकार कर उठता है– **'हा ! भारत ! किं लुण्ठकैरेव भोक्ष्यसे? हा वसुन्धरे! किं दीनप्रजानां रक्तैरेवस्नास्यसि? हा! सनातन धर्म! विलयमेव यास्यसि? हा चातुर्वर्ण्य! किं कथावशेषमेव भविष्यसि? हा मन्दिरवृन्द! किं धूलिसादेव**

सम्पत्यस्से? हा! साङ्गवेद किं भस्मतामेव प्राप्स्यसि? अहह!! धिग्! धिग्! रे ! कलिकाल ! यस्त्वं रक्षकानेव भक्षकान् विदधासि।''

उक्त रचनाओं में कवि का भक्ति-भाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

शिवराजविजय का धार्मिक पक्ष –

पं. अम्बिकादत्त व्यास ने अपने काव्य में शिवाजी जैसे चरितनायक एवं सफल राष्ट्राधारक छत्रपति वीर शिवाजी की धर्मपरायणता एवं धार्मिक भावनाओं से सुसज्जित विभिन्न स्थलों पर धार्मिक-पक्ष का बखूबी वर्णन किया है। कथानक के आरम्भ में ही कवि ने भगवान् सूर्य के प्रकाश को लोकमंगलकारी सिद्ध करते हुए सूर्य को ही जगत् का पालक और विनाशक मानते हुए प्रातःकालीन सूर्य का हृदयस्पर्शी चित्रण किया है–

'अरुण एष प्रकाशः पूर्वस्यां भगवतो मरीचिमालिनः। एषः भगवान् मणिराकाशमण्डलस्य, चक्रवर्तीखेचर-चक्रस्य, कुण्डल-माखण्डलदिशः, दीपको ब्रह्मण्डभाण्डस्य, प्रेयान् पुण्डरीकपटलस्य, शोक-विमोकः कोक-लोकस्य...।'

मुस्लिम वर्ग के अत्याचारों एवं अमानवीय व्यवहार के कारण मंदिरों की जय ध्वनि शान्त सी हो गई है, मंदिरों को तोड़ा जा रहा है एवं धर्मशास्त्रों को अग्नि में जलाया जा रहा है। ऐसे कारुणिक एवं धर्म विरोधी दृश्य को देखकर कवि का हृदय भी फूट पड़ता है–

'क्वाधुनामन्दिरे–मन्दिरे जय–जयध्वनिः? क्व साम्प्रतं तीर्थे तीर्थे घण्टानादः? क्वाद्यापि मठे मठे वेदघोषः? अद्य हि वेदां विच्छिद्य वीथिषु विक्षिप्यन्ते.....।'

इस उपन्यास में इतिवृत्त निर्वाह के लिए जिन पात्रों में एक ओर अधर्म तो दूसरी ओर धर्म के अवतार उपस्थापित किए हैं। 'यतो धर्मस्ततो जय' सिद्धान्त का यहाँ वीर शिवाजी ने पूर्ण परिपालन किया है–

''यो वैदिकधर्मरक्षाव्रती, यश्च सन्यासिनां ब्रह्मचारिणां तपस्विनाञ्च सन्यासस्य ब्रह्मचर्यस्य तपसश्चान्तरायाणां हन्ता, येन च वीरप्रसविनीयमुच्यते कोङ्कणदेशभूमिः तस्यैव महाराजशिववीरस्य आज्ञां वयं शिरसा वहामः।''

एक ओर जहाँ उपन्यास में कवि ने धर्म रक्षा का डिंडिमघोष किया है वहीं दूसरी

ओर अधर्म के प्रतीक अपजलखाँ आदि का धर्मविरोधिभाव को उजागर किया है–

''अथ सहासं सोऽब्रवीत् को नाम खपुष्पायितः शशशृङ्गायितः कमठीस्तन्यायितः सरीसृपश्रवणायितः भेकरसनायितो वन्ध्यापुत्रायितश्च शिवोऽस्ति? य एनं रक्षिष्यति, दृश्यतां इव एवैषाऽस्माभिः पाशैर्बद्ध्वा चपेटैस्ताड्यमानो विजयपुरं नीयते।''

यवनशासन से उत्पन्न अधर्म का प्रतिरोध न केवल शिवाजी ही करते थे प्रत्युत् सभी उनके सहयोगी समस्त मुनि–तपस्विगण,ब्राह्मण एवं क्षत्रियादि हिन्दू जाति के लोग किया करते थे।

कवि ने पद–पद पर मुस्लिम शासन द्वारा किए गए दुराचारों एवं उससे उत्पन्न भारत–माँ की दयनीय अवस्था का कारुणिक वर्णन उपनिबद्ध किया है। द्रष्टव्य है इन्हीं भावों को समेटे सूर्यास्त समय का वर्णन–

''म्लेच्छगणदुराचारदुःखाक्रान्तवसुमतीवेदनामिव समुद्रशायिनि निविवेदयिषुर्वैदिकधर्मध्वंसदर्शनसञ्जातनिर्वेद इव गिरिगहनेषु प्रविश्य तपश्चिकीर्षुः.......अन्धतमसे च जगत् पातयन् चक्षुषामगोचर एव संजातः।''

कवि ने कहा है कि मानव को बड़े से बड़े संकट में भी धैर्य धारण कर भगवद्भक्ति में तल्लीन रहना चाहिए। कवि ने काल की निस्सीमता और समाधि की प्रभविष्णुता प्रकट करते हुए योगिराज ने ईश्वर महिमा का उल्लेख करते हुए लिखा है–

''मुने! विलक्षणोऽयं भगवान् सकलकलाकलापकलनः सकलकालनः करालः कालः। स एव कदाचित् पयः पूरपूरितान्य-कूपारतलानि मरुकरोति।.....निरीक्ष्यताम् कदाचिद्स्मिन्नेव भारतवर्षे यायजूकैः राजसूयादियज्ञा व्ययाजिषत।

छत्रपति वीर शिवाजी के सैनिक मन्दिरों, कुटिरों एवं आश्रमों में सन्यासी के रुप में रहते हुए मुस्लिम-वर्ग द्वारा अमानवीय व्यवहार के किए जाने के कारण उन पर आक्रमण किया करते थे। शिवाजी की सेना दैव–शक्ति की प्रबल समर्थक थीं। पवनसुत वीर हनुमान् ही सबके जीवन को पुष्पित एवं पल्लवित कर सकेंगे। ऐसी मन्दिराध्यक्ष की मान्यता हुआ करती थी–

''हनुमान् सर्वं साधयिष्यति, मास्म चिन्ता सन्तान–वितानैरात्मानं...।''

इस प्रकार कहा जा सकता है कि शिवराज विजय में धार्मिक भावना का प्राधान्य है। उपन्यास के चरित्र-नायक शिवाजी ने सदैव हिन्दू धर्म को मुस्लिम आततायियों से बचाने का दृढ़ संकल्प लेकर धार्मिक भावों को जीवन्त एवं साकार बनाया है।

शिवराजविजय में सांस्कृतिक पक्षः–

कवि जिस परिवेश एवं वातावरण में रहता है उसकी स्पष्ट छाप उनकी रचनओं पर देखी जा सकती है। ऐसे ही भावों की सार्थकता पं. अम्बिकादत्त व्यास प्रणीत ''शिवराजविजय'' पर देखी जा सकती है। 19वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध भारतवासियों के संकट का काल था। इसे ही लक्ष्य कर कवि ने हिन्दूधर्म के सूत्रधार, गो, विप्र, धर्म एवं देश के संरक्षक छत्रपति वीर शिवाजी को अपने इस वीर रस प्रधान उपन्यास में नायक के रूप में प्रस्तुत कर इस काव्य को गति एवं संबल दिया है।

जब चारों ओर यवनों के अत्याचार का बोलबाला बढ़ जाता है तो योगिराज पूछते हैं कि विक्रमादित्य के राज्य में यह अत्याचार कैसा? यहाँ कवि का कथ्य तत्कालीन भारत में मुस्लिम वर्ग के दुराचरण की ऐतिहासिकता का दिग्दर्शन कराना है। इसी क्रम में ब्रह्मचारी गुरु योगिराज को उनके प्रश्न का उत्तर देते हुए कह रहे हैं कि वीर विक्रमादित्य को तो भारतभूमि को छोड़कर गए 17 सौ वर्ष व्यतीत हो गए हैं। उन्होंने अपने खिन्न मन से कहा कि अब मंदिरों में जय–जयकार कहाँ? अर्थात् अब तो मस्जिदों के निर्माण का समय है। अब तो यवनयुवकों द्वारा हिन्दू कन्याओं को सरेआम अपहरण किया जाता है तो लीजिए इन्हीं भावों को कवि के शब्दों में अभिव्यक्त किए देते हैं–

''क्वाधुना विक्रमराज्यम्। वीरविक्रमस्य तु भारतभुवं विरहय्य गतस्य वर्षाणां सप्तदशशतकानि व्यतीतानि। क्वाधुना मन्दिरे-मन्दिरे जय-जयध्वनिः? क्व सम्प्रति तीर्थे तीर्थे घण्टानादःक्वाद्यापि मठे-मठे वेदघोषः?''

शिवराजविजय के द्वितीय निश्वास में भगवान् श्रीकृष्ण का मनोहारी वर्णन, भैरव, सारङ्ग एवं गौरी आदि रागों का गीति माध्यम से नामोल्लेख करते हुए कवि ने तत्कालीन संस्कृति एवं देवभक्ति की झाँकी का उल्लेख किया है–

''सखि! हे नन्द-तनय आगच्छति। सखि.॥
मन्दं मन्दं मुरली-रणनैः समधिक-सुखं प्रयच्छति॥
भैरव-रूपः पापिजनानां सतां सुख-करो देवः।
कलित-ललित-मालती-मालिकः सुखर-वाञ्छित-सेवः॥
गौरी-पतिना सदा भावितो बर्हिण-बर्ह-किरीटः।
कनकशिपु-कदनो-बलि-मथनो विहित-दशानन-कीटः॥''

पं. व्यासकृत शिवराजविजय के द्वितीय निश्वास में यवनों के रहन-सहन एवं खान-पान का जिक्र करते हुए उत्प्रेक्षा अलङ्कार के माध्यम से यह प्रतिपादित किया है कि म्लेच्छ-जन मरने के बाद मुखाग्नि का सौभाग्य प्राप्त नहीं कर सकते, क्योंकि उनके धर्म में शव को गाड़ा जाता है। कवि का कथ्य है कि मानों वे धूम्रपान के व्याज से मुखाग्नि का सुअवसर जीवित रहते हुए ही प्राप्त कर रहे हों। द्रष्टव्य है इसी यवन संस्कृति की कलुषित झाँकी–

''तत्र च क्वचित खट्वासु, पर्यङ्केषु, चोपविष्टान्, सगडगडशब्दं ताम्रक-धूममाकृष्य, मुखात् कालसर्पानिव श्यामल-निःश्वासानुद्गिरतः, स्वहृदय-कालिमानमिव प्रकटयतः, स्वपूर्वपुरुषोपार्जितपुण्यलोकानिव फूत्कारैरग्निसात् कुर्वतः, मरणोत्तरमतिदुर्लभं मुखाग्निसंयोगं जीवन दशायामेवाऽऽकलयतः......यौवन-चुम्बित-शरीरान्, स्वसौन्दर्य-गर्व-मारेणेव मन्दगतीन् अनवरताक्षिप्त-कुसुमेषु-बाणैरिव कुसुमैर्भूषितान्, वसनातिरोहिताङ्गच्छटान्, विविध-पटवास-वासितानपि चिरास्नान-महामलिन-महोत्कट-स्वेद-पूतिगन्ध प्रकटीकृतास्पृश्यतान् यवनयुवकान्।''

एक ओर जहाँ हिन्दू–धर्म रहन–सहन एवं खानपान में शिष्टता, सादगी एवं श्रेष्ठ संस्कारों का साम्राज्य तो वहीं दूसरी ओर यवन–संस्कृति में अपशब्द (गाली–गलौच) सर्वत्र मांस–मदिरा के लिए हाहाकार सुनाई देता है। कवि ने यहाँ हिन्दू एवं यवन संस्कृति के रहन–सहन एवं खान–पान में अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखा है– **''यत्र विशालतिलकाः भगवन्नामामृतरस–रसन–रसिक–रसनाः महात्मनः सप्रश्रयं, सस्तवं, सपादस्पर्शश्च प्राणम्यन्तः। तत्र च एवाधुना वीथिषु महामांस-डक्कारपूतिगन्ध**

सम्बन्धान्धीकृतपारिपार्श्विकः वारवधूच्छिष्टभोजिमिभिः दुराचारहतकैरवहेल्यन्ते, अवधीर्यन्ते, गालिप्रदानपुरस्सरं तिरस्क्रियन्ते, क्वचन ताड्यन्ते निःसार्यन्ते च।''

छत्रपति शिवाजी सदैव प्रतिभा एवं विशिष्ट योग्यता का सम्मान किया करते थे, साथ ही वे अपने लोगों की कुशलक्षेम तो पूछते ही थे उनमें शत्रु वर्ग के साथ ही भी शिष्टता एवं सदाशयता से बर्ताव करने का महनीय गुण था। निःसंदेह शिवाजी भारतीय संस्कृति के प्रबल संपोषक थे। देखिए शिवाजी की ये बानगी–

''इतो इतो गौरसिंह, उपविश, चिराय दृष्टोऽसि। अपि कुशलं कलयसि? अपि कुशलिनः तव सहवासिनः। अप्यंगीकृतं महाव्रतं निर्वहथ यूयम्। अपि कश्चिन्नूतनो वृत्तान्तः?''

उपर्युक्त तथ्यों एवं शिवराजविजय के अध्ययन के पश्चात् यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि छत्रपति शिवाजी भारतीय संस्कृति के उद्गाता उसके महामहिम स्वरूप के प्रकाशक तथा उसकी सनातन दिव्य परम्परा के संवाहक हैं।

शिवराजविजय का सामाजिक चित्रण :–

'शिवराजविजय' नामक ऐतिहासिक उपन्यास में मुगलों द्वारा हिन्दुओं पर अनायास किये जा रहे अत्याचार, अमानवीय व्यवहार, हिन्दुओं के धर्म परिवर्तन तथा यवनों द्वारा ही पुराणों को पीसकर पानी में फेंकना, धर्मशास्त्रों को उछालकर आग में झोंकने, वेद ग्रन्थों को फाड़कर गलियों में बिखेरने, मन्दिरों को तोड़ने, भाष्यों को भ्रष्ट कर भाड़ में झोंकने, स्त्रियों का अपहरण करने एवं धन–सम्पत्ति की लूटपाट करने जैसी दुष्प्रवृत्ति उनकी प्रकृति का अहं हिस्सा बन चुकी थी ''.....**क्वचिद् दारा अपह्रियन्ते, क्वचिद् धनानि लुण्ठ्यन्ते, क्वचिदार्त्तनादाः, क्वचिद् रुधिरधाराः, क्वचिदग्निदाहः, क्वचिद् गृहनिपातः इत्येव श्रूयतेऽवलोक्यते च परितः।''**

ऐसी संकटमयी स्थिति में महाराष्ट्रमुकुटमणि क्षत्रपति वीर शिवाजी के मन में स्वामी विवेकानन्द का यह कथन पूर्णरुपेण घर कर चुका था ''तभी और केवल तभी हम हिन्दू कहलाने के अधिकारी हैं, जब इस नाम को सुनते ही हमारी रगों में शक्ति की विद्युत तरंग दौड़ जाए।'' ऐसे समय में उन्होंने हिन्दुओं में वीरता का भाव जाग्रत कर मुस्लिम-

वर्ग को ललकार दिया। शिवाजी के समस्त अनुयायी गुप्तचर एवं देशभक्त सभी अपने–अपने कार्यों को भलीभाँति संपादित कर रहे थे। द्वारपाल की कर्तव्यनिष्ठा की परीक्षा लेने के लिए गौरसिंह को सन्यासी के रूप में प्रस्तुत कर उनकी कुशल कर्तव्यनिष्ठा का बखूबी परिचय दिया गया है। द्वारपाल के इस ओजस्वीपूर्ण कथन से द्वारपाल की अटूट कर्तव्यनिष्ठा का आकलन हो जाता है–

''सन्यासिन्! सन्यासिन्! बहूक्तम्, विरम, न वयं दौवारिका ब्रह्मणोऽप्याज्ञां प्रतीक्षामहे। किन्तु यो वैदिक धर्मरक्षाव्रती, यश्च सन्यासिनां ब्रह्मचारिणां तपस्विनां च सन्यासस्य ब्रह्मचर्यस्य तपसश्चान्तरायाणां हन्ता, येन न वीरप्रसविनीयमुच्यते कोङ्कणदेशभूमिः तस्यैव महाराजशिववीरस्याऽऽज्ञां वयं शिरसा वहामः।''

उक्त अनुच्छेद के माध्यम से द्वारपाल ने वीर शिवाजी को वैदिक धर्म रक्षाव्रती, सन्यासियों, ब्रह्मचारियों तथा तपस्वियों का विघ्ननाशक सिद्ध कर वर्तमान परिप्रेक्ष्य में स्वामिभक्त का भाव जीवन में अपनाने का आह्वान किया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि शिवराजविजय में तत्कालीन सामाजिक स्थिति का नैक स्थलों पर वर्णन कर कवि ने सामाजिक सरोकारों का पर्दाफाश किया है, क्योंकि 'साहित्य समाज का दर्पण' होता है।

शिवराजविजय में चरित्र–चित्रण : किसी भी उपन्यास की उपादेयता उसके पात्रों के चरित्र–चित्रण पर आधारित होती है। पं. व्यास ने 'शिवराजविजय' में यथास्थान पात्रों का चित्रण कर उपन्यास विधा को एक नव दिशा प्रदान की है। 'व्यक्तित्वं सर्वत्र भाषते' उक्ति के अनुसार कोई भी व्यक्ति अपने प्रभावी व्यक्तित्व के कारण ही अपनी मिसाल कायम करता है। इस उपन्यास का मुख्य उद्देश्य नायक के चरित्रगत वैशिष्ट्य को सफलता से उद्घाटित करना है। यहाँ कवि ने सभी पात्रों को बनावटी प्रस्तुत न कर यथार्थ एवं जीवन्त सिद्ध किया है। इसमें प्रमुख रूप से छत्रपति शिवाजी, गौरसिंह, रघुवीरसिंह, योगिराज सौवर्णी, ब्रह्मचारिगुरु एवं अफजलखाँ आदि पात्रों का प्रभावी चित्रांकन किया गया है।

(क) महाराष्ट्र मुकुटमणि शिववीरः–

यह प्रमाण तो स्वयंसिद्ध है कि इस उपन्यास (शिवराजविजय) के नाम से ही

'शिवराज' अथवा छत्रपति वीर शिवाजी का धीरोदात्तनायकत्व सिद्ध हो जाता है। शिवाजी में नायकोचित सभी गुण प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देते हैं। शौर्यशाली, नम्र, मर्यादापालक, दयालु तथा स्वतन्त्रता एवं सर्वधर्म के रक्षक वीर शिवाजी ने अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मृत्यु से भी निर्भय होकर दिल्लीश्वर औरंगजेब के आधिपत्य को भी ठुकरा दिया। समूचे महाराष्ट्र प्रदेशवासियों ने अपने राजा(शिवाजी) के लिए प्राणों की आहूति देने को भी तैयार हो गए।

शिवराजविजय के 11वें उच्छ्वास में कवि ने उल्लेख किया है कि मुगल शासक औरंगजेब द्वारा दिल्ली में कैद कर लिये जाने पर शिवाजी अपने मित्रों की सहायता तथा अपनी युक्तिमत्ता एवं साहस के बल पर ही बाहर निकलने में समर्थ हुए। मननीय है शिवाजी के पारतन्त्र्य चिन्तारोग की एक छटा–

'चिकित्सक! प्रत्यक्षतो न ज्ञायते को रोगः किन्तु क्षुधा ह्रसते, अंगानि च निर्बलानि भवन्ति।....सत्यमन्येऽपि चिकित्सका एवमेव वदन्ति। किन्तु न जाने कीदृशोऽयं रोगो यज्ज्वलयत्यङ्गानि।'

इस प्रकार उक्त प्रसंग के अध्ययन से पाठक पर शिवाजी के चरित्र के अनुकरणीय गुणों, वीरता, साहस, बुद्धिमता, निर्भयता, सन्मैत्री एवं लोकप्रियता का प्रभाव तो पड़ता ही है, साथ ही उनकी स्वतन्त्रता के प्रति आस्था, देशभक्ति एवं कर्तव्यनिष्ठा की भावना भी सीखने को मिलती है। महाराष्ट्रराज अपने कार्यों में सदैव अटल, अडिग एवं अविचल रहते थे। जैसा कि प्रथमोच्छवास में उन्होंने अपनी सारगर्भित प्रतिज्ञा का उल्लेख किया है–

''कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्''। क्षत्रपति वीर शिवाजी भारतीय संस्कृति के साक्षात् प्रतिमान थे। वे अपने सेवकों से कुशल–मंगल पूछना एवं उनकी समस्याओं का सहजता से समाधान कर उनका समुचित सत्कार किया करते थे। जैसा कि गौरसिंह को देखकर महाराज शिवाजी ने कहा–

''इत इतौ गौरसिंह! उपविश, उपदिश.....वृतान्तः?'' न केवल अपने लोगों पर ही बल्कि शत्रुओं के संदेशवाहकों के प्रति भी उनका शिष्टतापूर्ण व्यवहार होता था। शिवाजी

को यह ज्ञात होने पर भी कि पं. गोपीनाथ बीजापुर नरेश की गुप्तसन्धिवश उनके समक्ष प्रस्तुत हुआ है तो भी उन्होंने 'अतिथि देवो भव' की उक्ति को आत्मसात् कर उसके विश्राम करने हेतु आदेश दिया–

''गम्यतां दुर्गान्तर एव महावीरमन्दिरे तस्मै वासस्थानं दीयताम्, भोज्यपर्यकादि–सुखदसामग्री जातेन च सत्क्रियताम्। ततोऽहमपि साक्षात्करिष्यामि।''

शिवाजी की अद्भुत वीरता के कारण विरोधी लोग उनकी वीरता के आतंक से सदैव भयभीत रहते थे। जैसा कि शिवाजी के आतंक का वर्णन करते हुए कवि ने बड़े ही वैविध्यपूर्ण ढंग से लिखा है–

''कथं वा आगत एष शिववीरः इति भ्रमेणापि सम्भाव्य अस्य विरोधिषु केचन मूर्च्छिता निपतन्ति, अन्येविस्मृतशस्त्राशस्त्राः पलायन्ते।'' शिवाजी में देशप्रेम की भावना कूट–कूट कर भरी थी, साथ ही वे एक स्वाभिमानी प्रकृति के भी थे। इन्हीं भावों को अभिव्यक्त करते हुए कवि लिखता है–**''शिववीरः– भारतवर्षीयाः यूयम्, तत्रापि महोच्चकुलजाताः, अस्ति चेदं भारतवर्षम् भवति च स्वाभाविक एवानुरागः सर्वस्यापि स्वदेशे, पवित्रतमश्च यौष्माकीणः सनातनो धर्मः, तमेते जाल्माः समूलमुच्छिन्दन्ति, अस्ति च प्राणाः यान्तु न च धर्मः इत्यार्याणां दृढः सिद्धान्तः।''**

शिवराज विजय के प्रथम निश्वास में महाराज शिवाजी के सद्गुणों, नीति–नैपुण्य एवं उनके महनीय चरित्र पक्ष को उजागर किया गया है–

''महाराष्ट्रदेशरत्नम् वीरता सीमन्तिनीसीमन्तसुन्दर-सान्द्र- सिन्दूर-दान-देदीप्यमानदोर्दण्डः, मुकुटमणिर्महाराष्ट्राणां भूषणं भटानाम्, निधिर्नीतीनाम्, कुलभवनम् कौशलानाम्, पारावारः परमोत्साहानाम्, कश्चन प्रातः स्मरणीयः स्वधर्माऽऽग्रहग्रहग्रहिलः, शिव इव धृतावतारः, शिववीरश्चास्मिन् पुण्यनगरान्नेदीयस्येव सिंहदुर्गे ससेनो निवसति।''

शिवाजी ने अपने मनोवैज्ञानिक व्यवहार और वाक्–चातुर्य से धुरन्धर विपक्षी लोगों को भी अपने वशीभूत किया। शिवाजी द्वारा हिन्दू धर्म की रक्षा का जिक्र करने पर विपक्षी पण्डित लोग अपने अस्त्र–शस्त्रों को त्याग देते थे।

वीर शिवाजी सदैव योग्यता एवं प्रतिभा का सम्मान किया करते थे। उन्होंने

ख्यातनाम भूषणकवि के ओजस्वी एवं प्रवाहपूर्ण काव्यपाठ से प्रभावित होकर उन्होंने पुरस्कार स्वरुप कवि को 20 हाथी दिए साथ ही उन्हें 'राजकवि' की पदवी भी प्रदान की। शृंखला की इसी कड़ी में कवि ने लिखा है–

''महाराजस्तु'' साधु साधु'' इति व्याहृत्य पुनः पठितुमाज्ञप्तवान्। पठितवति च तस्मिन् सर्वेषु प्रसन्नेषु पुनरप्यादिशत्। इत्येवं विंशतिः वारं तेन सा व्रजभाषामयी कवित्वकामानिका वृत्तिरपाठि। महाराजेन यः तस्मै गजानां विंशतिर्वितीर्णा, इत्यद्यापि प्रसिद्धं कवितारसिकानां मण्डले। तदेव च दिनमारभ्य तेन भूषणकविः स्वसभायां संस्थापितः।'' छत्रपति वीर शिवाजी अनावश्यक रक्तपात में विश्वास नहीं करते थे। यहाँ तक कि अनेक बार उन्होंने शत्रु के प्रति भी दयालुता बरती। इसका जीता–जागता ज्वलन्त उदाहरण है– चांदखान के पुत्र पर अनुकम्पा कर उन्होंने कहा–

''अपसराऽपसर, किमिति मृषास्वपितृशोणितदिग्धमत्करवालधारा तीर्थे शरीरं विसिसृक्षसि? समालोक्य तव मुग्धं मुखमण्डलं करुणा परवशः, क्रौर्यमाचरितुं नोत्सहे।''

शिवाजी स्पष्टवादी, निर्भीक, तेजस्वी एवं युद्धकौशल में प्रवीण थे।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि परतन्त्रता की कालिमा से निकालकर स्वतन्त्रता रुपी राष्ट्रीय चेतना की जाग्रति एवं राष्ट्र रक्षण में वीर शिवाजी का योगदान स्वर्णाक्षरों में उट्टंकनीय है। इसी कारण महाराष्ट्र केसरी वीर शिवाजी को **''हिन्दू राष्ट्र कल्पना का जनक''** कहा जाता है।

(ख) सौवर्णीः–

पं. अम्बिकादत्तव्यासकृत ऐतिहासिक उपन्यास 'शिवराजविजय' के स्त्रीपात्रों में ''सौवर्णी'' को मुख्य रुप से चित्रित किया गया है। ''सौवर्णी'' को प्रारम्भ में कवि ने यवनों के आक्रान्त से पीड़ित एक लावण्यमयी बालिका के रुप में प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास में वर्णित वृतान्त के अनुसार ''सौवर्णी'' की माताश्री का देहावसान उसकी बाल्यावस्था में ही हो गया था और उसके पिताश्री मुगल सैनिकों के साथ युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हो गये थे। सौवर्णी के बालरुप का एक कारुणिक दृश्य द्रष्टव्य है–

''क्षणानन्तरं छात्रेणैकेन भयभीता सवेगमत्युष्णं दीर्घं निश्वसती, मृगीव व्याघ्राघ्राता, अश्रुप्रवाहैः स्नाता, सवेपथुः कन्यकैकांके निधाय समानीता। चिरान्वेषणेनापि च तस्याः सहचरी सहचरो वा न प्राप्तः।''

''कौन भाव सुन्दर नहीं होते, युवावस्था आने पर'' यौवन की चौखट पर पाँव रखते ही शरीर पर एक अलग ही सौन्दर्यमयी कान्ति देखने को मिलती है। इन्हीं भावों को साकार करते हुए द्रष्टव्य है सौवर्णी का सौन्दर्यागारः–

''सेयं वर्णेन सुवर्णम्,....वयसैकादशमिववर्षस्पृशन्ती, श्यामकौशेयवस्त्र–परिधाना,.....मन्दं मन्दं, मुग्ध मुग्धं, मधुरम् मधुरम् किंचिद् गायतीति।''

शिवराजविजय के द्वितीय विराम के सप्तम निश्वास में विशेष रुप से सौवर्णी की दो सखियों चारुहासिनी एवं विलासिनी के साथ उद्यान में विहार करने का कवि ने बड़ा ही पाण्डित्य सरस एवं प्रांजल शैली में वर्णन किया है। सौवर्णी को सामान्यतया सर्वाङ्गसुन्दरी, अतिगम्भीर, सुशील, व्यवहारकुशल, मनोज एवं प्रभावी चरित्रमुक्ता स्त्री पात्र के रुप में प्रोद्भासित किया गया है। झूलते हुए सौवर्णी की दोनों सखियों में से परिहासवश एक सखी ने कहा गिरने से न डरने एवं पति के साथ झूला झूलने के रसास्वादन का वर्णन कवि ने अपनी मणिमाला में पिरोते हुए लिखा है– **''अथ तयोरेका–सौवर्णि! किमिव बिभेषि? आवयोर्मध्ये स्थिताऽसि, शृङ्खला–ग्राहणासक्तां मुष्टिं मा शिथिलय, न पतिष्यसि। साम्प्रतमेव विहिताभ्यासा चेत् पत्या समं सुखेन ढोला–विहार–रसं रसयिष्यसि–इति सस्मितमालपत्।''**

सौवर्णी की दोनों सखियों द्वारा मूयोभूयः प्रेमालाप की बात करने एवं अपने मन की बात कहने के पक्ष को लेकर सौवर्णी वियोगाग्नि में जलने लगी। क्योंकि वियोग की आग शरीर को न तो जलाती ही है और ना ही जीने देती है। सौवर्णी की वियोग दशा का वर्णन ध्यातव्य है–

''तां तथा निःशब्द–रोदनेनापि रोदसी रोदयन्तीम्, सधडत्कृतिना वक्षसा, विवर्णेन, शून्यया दृष्ट्या, विकलतया चाङ्गयष्ट्या, अतिस्फुटीकृत

प्रियविरहक्लेशमाकलय्य, परवशतामङ्गीकुर्वदिव हृदयम्, भज्यमानामिव चाचम्, रुध्यमानमिव कण्ठम् वेपमानमिव विग्रहम्...।''

पुरोहित के निर्देश का पालन करती हुई वह रघुवीर को माल्यार्पण से पतिरूप में चुना। तत्पश्चात् वह हमेशा अपने प्रियतम को देखने की इच्छा करती किन्तु सौवर्णी हमेशा कौमार्यव्रत का पालन करने के लिए सन्नद्ध थी। सौवर्णी विश्वासघाती को पतिरूप में नहीं देखना चाहती थी किन्तु उसके मन में यह दृढ़ निर्णय था कि उसका पति अपने स्वामी के साथ विश्वासघात नहीं करेगा। द्रष्टव्य है उन्हीं भावों की एक छटा–

''धिक्! नाहं तावद् तादृशमुदारस्वभावं कुलीनं युवानां विद्रोहीति विश्वसिमि। सूर्यो यदि प्रत्यगुदीयात्, गगनतलं वा प्रफुल्लकमलमण्डल मण्डितवलोकयेत्, ततोऽपि न भवेन्मे विश्वासस्तदीय कपटस्य।।'' इस प्रकार सौवर्णी का चरित्र–चित्रण एक असहाय बालिका के रूप में प्रारम्भ कर वधूरूप में समाप्त होता है।

(ग) रघुवीर सिंहः–

प्रस्तुत उपन्यास में रघुवीरसिंह को जयपुर निवासी किसी सामन्त पुत्र के रुप में चित्रित किया गया है। 'रघुवीरसिंह' को हम उपनायक के रूप में भी अभिहित कर सकते हैं। यद्यपि सौवर्णी एवं रघुवीरसिंह की उपन्यास के आरम्भ से अन्त तक महती भूमिका दृष्टिगोचर होती है। साथ ही वे नायक–नायिका के रुप में भी प्रस्तुत किये जा सकते थे किन्तु कवि ने यहाँ अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय देते हुए छत्रपति वीर शिवाजी को प्रमुख नायक के रुप में रख रघुवीरसिंह एवं सौवर्णी का योगदान भी प्रमुखता से उकेरा है। रघुवीर सिंह असीम कष्टों को सहर्ष स्वीकार कर उनका सम्यकतया निवारण करता है। उनकी 'कर्तव्यनिष्ठा' अतुलनीय है। इसी का प्रतिफल है वह एक साधारण पत्रवाहक पद से 'मण्डलेश्वर' पद तक पदोन्नति प्राप्त कर उत्तरोत्तर अपने दायित्वों का भलीभाँति निर्वहन करता है।

आरम्भ में रघुवीरसिंह को निर्भय, साहसिक और कर्तव्यनिष्ठ पत्रवाहक के रुप में निरुपित किया है। वह सिंह दुर्ग से तोरणदुर्ग की ओर वीर शिवाजी का पत्र लेकर वर्षा–तूफान–विद्युतादि नैक प्राकृतिक बाधाओं का सामना करते हुए भी वह वीर अपनी पूर्ण निष्ठा से कार्य करता है।

एक बार अवकाश के अवसर पर उन्होंने श्रुतिमधुर गीत ध्वनि सुनकर उस गायिका को अन्वेषण करते हुए ''सौवर्णी'' को देखा तथा प्रथम दृष्टि में ही उससे प्यार कर बैठा।

जब वह अपनी प्रेयसी को खिन्न रुप में देखता है, तो अपनी विवशता को उसके समक्ष प्रकट करते हुए तथा उसे सान्त्वना देते हुए कहता है–

''प्रिये ! किमेतत्? अहह ! किमिति ताम्यसि? शुष्यसि, ग्लायसी खिद्यसे च? हन्त ! अहमेव वा किं करोमि? अश्वपृष्ठमेव मे गृहम्। तत्कथं मादृशमशरणमव्यवस्थं च चिन्तयन्ती चेतश्चंचलयसि, प्रत्यहं शुष्यन्ती तव गात्रयष्टिमालोक्य स्वप्नेष्वप्युद्विजे।''

सौवर्णी की उसके लिए अटूट श्रद्धा एवं प्रेमाभिव्यक्ति को सुनकर यह अहम् निर्णय कर लिया कि वह सौवर्णी को ही पत्नी रूप में स्वीकार करेगा अन्यथा जीवन पर्यन्त अविवाहित जीवन ही बिताएगा। इसी संदर्भ में उन्होंने कहा है–

''किमत्र संशेषे? काऽत्र संदेहः? काऽत्र विचिकत्सा? कौमार ब्रह्मचर्यमहाव्रतेनैव गात्राणि जर्जरयिष्यामि, त्वामेव वा परिणेष्यामीति सुदृढो मे नियमः।''

रघुवीरसिंह का अदम्य उत्साह और युद्ध में अग्रणी रहकर वीरोचित प्रशस्य कार्य का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है–

''....सोऽयं रघुवीरसिंहः, यः सर्वेभ्यः प्रथममेव दुर्गान्तः प्रविश्य साहसमप्यकार्षीत्। तेन सहैव वीरः राजशिवोऽपि शार्दूल इव जघन्यवन्यमण्डले समापतत्। तन्निरीक्ष्य शतशो महाराष्ट्र–वीरास्तथैव सकूर्दनं दुर्गान्तः प्रविष्टाः। तत्र च मुहूर्तं तुमुलं युद्धमभूत्।'' इस प्रकार रघुवीर सिंह पराक्रम, कर्त्तव्यनिष्ठा, स्वामिभक्ति और प्रेमव्यवहार में पूर्ण निष्ठा से कार्य करते हुए 'उपनायक' पद से अलंकृत किये जाते हैं।

(घ) गौरसिंहः–

पंडितप्रवर अम्बिकादत्त व्यास विरचित 'शिवराजविजय' में गौरसिंह का चरित्र–चित्रण

काफी प्रशस्य व महत्त्वपूर्ण है। गौरसिंह शिवाजी के अत्यधिक विश्वासपात्र एवं प्रिय तो थे ही साथ–साथ राजनीति विशारद, कर्त्तव्यनिष्ठ एवं स्वामिभक्त भी थे।

अकेले गौरसिंह ने अपजलखाँ के तीन घोड़ों तथा पाँच ब्राह्मण बालकों को छुड़वाकर अपने वीरत्व का अचूक परिचय दिया। जैसा कि ब्रह्मचारी गुरु ने कहा है–

''वत्स गौरसिंह! अहमत्यन्तं तुष्यामि त्वयि, यत् त्वमेकाकी अपजलखानस्य त्रीनश्वान् तेन दासीकृतान् पञ्च ब्राह्मणतनयांश्च मोचयित्वा आनीतवानसीति। कथं न भवेरीदृशः? कुलमेवेदृशं राजपुत्रदेशीय-क्षत्रियाणाम्।''

गौरसिंह हास्यरस सर्जना के क्षेत्र में भी बड़े पारंगत थे। महिलोचित वस्त्रों को धारण कर हास्य प्रसंग का एक द्रष्टान्त पठनीय है–

''प्रभो! गोरः प्रकृत्यैवातिसुन्दरः। तत्रापि दिवाकीर्तिमाहूय, मसृणमुखं संवृत्य, अधररागमञ्जनरंजनं वारवधूयोग्यमाभरणजातं प्रच्छदकपटं च धारयित्वा, शिविकामारुह्य, वीरैरेवाकलित–भारवाह– वेषैरुह्यमानः तदीयशिविरमण्डलमासाद्य ''पद्मिनी'' नाम्नी जगत्प्रसिद्धा-महाराष्ट्रदेशीया वारांगना समागच्छति इति समसूसुचत।'' गौरसिंह युद्ध में अपनी तलवार का बड़ी ही चतुराई से प्रहार करने में सिद्धहस्त थे। ऐसा ही एक दृश्य एक यवन–युवक को तलवार से प्रहार किया कि कोई देख भी नहीं पाया–

''ततो गौरसिंहः दक्षिणान् वामांश्च परश्शतान् कृपाणमार्गानङ्गीकृतवतः, दिनकर–कर–स्पर्श–चतुर्गुणीकृत–चाकचक्यैः चञ्चच्चन्द्रहास–चमत्कारैश्चक्षूंषि मुष्णतः, यवन–युवक–हतकस्य, केनाप्यनुपलक्षितोद्योगः,अकस्मादेव स्वासिना कलित–क्लेद–सञ्जात– स्वेदजलजालं विशिथिल–कच–कुल–मालं भग्न–भ्रू–भयानक–भालं शिरश्चिच्छेद।''

शिवाजी द्वारा नियुक्त द्वारपाल की परीक्षा लेने के लिए गौरसिंह एक सन्यासी का रुप धारण कर द्वारपाल को अनेक प्रकार के प्रलोभन देकर वह दुर्ग में प्रवेश करना चाहता है। यहाँ सन्यासी का उद्देश्य है कि क्या नियुक्त द्वारपाल कहीं मुगलों के प्रलोभन में फंसकर कहीं अहित तो नहीं कर देंगे। किन्तु द्वारपाल की कर्तव्यनिष्ठा एवं निर्लोभता

से सन्यासी के वेष में परीक्षा ले रहे गौरसिंह काफी प्रसन्न हुए। द्वारपाल द्वारा पहचान लिए जाने पर गौरसिंह ने द्वारपाल को योग्य, कर्त्तव्यनिष्ठ एवं पुरस्कार भाजन सिद्ध करते हुए कहा है–

''दौवारिक। मया बहुशः परीक्षितोऽसि, ज्ञातोऽसि यथायोग्य एव पदे नियुक्तोऽसि चेति। त्वादृशा एव प्रभूणां पुरस्कारभाजनानि भवन्ति, लोकद्वयं च विजयन्ते।''

गौरसिंह अफजलखान के यहाँ गायक के रुप 'तानरङ्ग' बनकर जाता है। द्रष्टव्य गौरसिंह की वाक्पटुता एवं बहुज्ञता का एक परिचय–

''**अपजलखानः–** किन्देशवास्तव्यो भवान्?

तानरङ्गः– श्रीमन्! राजपुत्रदेशीयोऽहमस्मि।

अपजलखानः– ओः! राजपुत्रदेशीयः?

तानरङ्गः– आम्!श्रीमन्।

अप.– तत् कथमत्र महाराष्ट्रदेशे?

तान.– सेनापते! मम देशाटन–व्यसनं मां देशाद् देशं पर्याटयति।

तान.– एवं चमूपते ! नव्यान् देशानवलोकयितुम्, नवा नवा भाषा अवगन्तुम् नूतना नूतना गान–परिपाटीश्च कलयितुम् एधमानमहाभिलाष एष जनः।''

शिवराजविजय के द्वितीय निश्वास का अध्ययन करने पर गौरसिंह की संगीत शास्त्रज्ञता का भी परिचय मिलता है। गौरसिंह ही अपहृत बालिका को यवनों के चंगुल से मुक्त करवाने में कामयाब होता है। वह एक कुशल राजनीतिवेत्ता भी था।

(ङ) रसनारीः—

रसनारी अथवा रोशनआरा दिल्लीश्वर औरंगजेब की पुत्री थी। वह महाराष्ट्र शिरोमणि वीर शिवाजी के गुणों पर मोहित हो उन पर अनुरक्त हो जाती है किन्तु शिवाजी उससे स्पष्ट रुप से कह देते हैं कि वे उसके पिता द्वारा दिये जाने पर ही उसे स्वीकार कर सकते हैं। वह शिवाजी के पास अनेक प्रेम-पत्र एवं अपनी चाहत भरे संदेश

पत्र भेजकर अपनी दैहिक क्षुधा को शान्त करने की बात कहती है। यद्यपि रोशनआरा दैहिक-सौन्दर्य एवं यौवनसुलभ आकर्षण में वह किसी से कम नहीं थी। वीर शिवाजी द्वारा बार–बार पूछने पर अपनी चाहत भरी दिल की बाल उगल दी–

''महाराज! किमिवाऽऽच्छन्दयसि? विचित्रास्तव मायाः, विलक्षणास्तव घटनाः। यदा यदा मां साक्षात् करोषि, तदा तदानया तु मूर्त्याऽऽचारं विनयं मर्यादामेव रक्षसि। निद्रायामपि मम कदाचिदंशुकं स्पृशसि, कर्हिचित् कपोलयोः स्वेदानपहरसि....।''

एक बार कक्ष के बाहर जमा भीड़ ने जब 'अग्नि–अग्नि' कहकर उच्च स्वर में चिल्लाने लगे तो उसके भय से 'रसनारी' ने शिवाजी को अपने बाहुपाश में ले लिया, यही उनका प्रथम एवं अन्तिम शारीरिक स्पर्श था। तोरणदुर्ग से राजधानी दिल्ली की ओर जाती हुई रसनारी शिवाजी वियोग से काफी पीड़ित दिखाई दे रही थी। यद्यपि अपने निश्छल प्रेम का परिचय देते हुए छत्रपति वीर शिवाजी के दिल्ली जाने पर उसने शिवाजी के पास अपना संदेश भी भेजा, किन्तु शत्रु नगरी में और शत्रु की पुत्री के साथ अर्थात् औरंगजेब की पुत्री रसनारी के साथ मिलना अनिष्टकर ही था। रसनारी में अपने हठधर्मी पिता के विरुद्ध आवाज उठाने का साहस भला कैसे संभव था? जैसा कि कहा गया है–''अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी आँचल में है दूध और आँखों में पानी...।'' इस प्रकार अन्ततोगत्वा आत्महत्या के लिए विवश होने के अतिरिक्त और उपाय भी क्या हो सकता था?

इसी प्रकार अन्य पात्रों में देवशर्मा, माल्यश्रीक, भूषणकवि, जसवन्त सिंह, जयसिंह, अपजलखान शास्तिवान–'क्रूरसिंह' चांदखान एवं औरंगजेब प्रमुख रुप से उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त चरित्र–चित्रण के विवेचन एवं विश्लेषण से यह स्वतः परिलक्षित हो जाता है कि पं. व्यास ने अपनी प्रसूत एवं समृद्धतम लेखनी से भारतीय संस्कृति के उन स्वर्णिम पृष्ठों के मूल भाव को उजागर किया है जिसमें **''देहं वा पातयेयम्, कार्यं वा साधयेयम्''** जैसे मूलमन्त्र के आधार स्तम्भ एवं हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए सदैव तत्पर छत्रपति शिवाजी जैसे प्रख्यात धर्मसंरक्षक को आधार बनाकर परतन्त्रतारूपी पाश से मुक्त करवाने का बिगुल बजाया है।

शिवराजविजय एक कमनीय साहित्यः–

शिवराजविजय में परम्परागत शैली का आश्रय होकर रसयोजना, प्रकृतिवर्णन, मानवीय सौन्दर्यवर्णन अलङ्कारयोजना और अन्य काव्य तत्त्वों का पूर्णतया समावेश किया गया है। यह उपन्यास प्राचीन और अर्वाचीन शैली का संगम स्थल है। शिवराजविजय की भाषा सरस, सरल,सुबोध, प्राञ्जल एवं प्रवाहपूर्ण है। संस्कृत–वाङ्मय में समास बहुलता कवि के प्रखर पाण्डित्य का परिचायक है। सामान्यतया समासों में तत्पुरुष एवं बहुव्रीहि दीर्घ पदावली का बोध होता है। कहीं कहीं तो एक पद में ही बहुव्रीहि और तत्पुरुष समास की प्रवृत्ति द्रष्टव्य है–

'फलपटलास्वाद चपलित चञ्चुपतङ्गकुलक्रमणाधिक विनतशाखा शखिसमूहव्याप्तः।' यहाँ पर 'फलपटलास्वादचपलिताः चञ्चवो येषां ते इति प्रथमं परिचयः। ततः पतत्रिपद से कर्मधारय तथा उसके कुलशब्द से षष्ठीतत्पुरुष, कुलस्य आक्रमणेन विनताः शाखा येषामिति पुनः बहुव्रीहि तथा ते च शाखिनः इति कर्मधारय और पुनश्च समूह पद से षष्ठी–तत्पुरुष हुआ।

असमर्थसमास की छटा का एक नजरिया–

''विविधयुद्धेषु विहितशिवसाहचर्यः।' इसी प्रकार दीर्घ समस्तपदावली की छटा मन्तव्य है–

''...........**श्री दिगन्तदन्तदन्तुदन्तुरितकीर्ति कौमुदीधवलित-वसुधातलराज-पुत्रदेश चूडामणिभूत जयपुर प्रदेश सीमन्तमण्डलीमस्त-कमण्डनमण्डितपादारविन्दो जयपुराधीशः साशी राशि सूचयति।'** वीप्सार्थक प्रतिशब्द में अव्ययी भावसमास का प्रयोग नैक स्थलों पर किया गया है– प्रतिशृङ्गाटकम् प्रतिविपणि प्रतिगोपुरं प्रतिपल्लि च दोधूयन्ते...।'' कवि ने सूर्यास्त वर्णन प्रसङ्ग में उप्रत्ययान्त पदों का प्रयोगकर अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा का कुशल परिचय दिया है।

यथा–''श्रान्तइवसुषुप्सु...निविवेदयिषुः, तपश्चिकीर्षुः, समुद्रजले सिस्नासुः, सन्ध्योपासनामिव विधित्सु कन्दरेषु प्रविविक्षुः।''

कवि ने अपने उपन्यास शिवराजविजय में अनेक स्थलों पर देशवाचकशब्दों से तद्धितप्रत्ययों का प्रयोग किया है जो अनावश्यक सा प्रतीत होता है–

''वङ्गेषु, कलिङ्गेषु, अङ्गेषु, मगधेषु, मत्स्येषु, मैथिलेषु, काशिषु, कोशलेषु, कान्यकुब्जेषु, चोलेषु, पाञ्चालेषु, काञ्चिषु, शौरसेनेषु, सिन्धुषु, सौराष्ट्रेषु च दोधूयन्ते।''

शिवराजविजय में उपन्यासोचित सरल ललित भाषा के प्रयोग में पं. व्यास ने दैनिक उपयोगी वस्तुओं के लिए नवसंस्कृत शब्दों का प्रयोग करने में अपना कवि–कौशल प्रदर्शित किया है– काचमंजूषा(लालटेन), चुक्रम् (अम्ल), काष्ठपीठम् (चौकी), भ्राष्ट्रम् (माड़), वडिशम् (वंशी), प्रियालः (प्याज), रसनारी(रोशनआरा), मायाजिह्मः (मुअज्जम)।

प्रकृति चित्रणः—

प्राकृतिक सौन्दर्य के विविध रूपों की झाँकी प्रस्तुत करने वाला प्रशस्य उपन्यास 'शिवराजविजय' हटात् ही सहृदयों के चित्त को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। कृतिकार ने उपन्यास के आरम्भ में भगवान् सूर्य के प्रकाश को लोकमंगलकारी सिद्ध करते हुए भगवान् दिवाकर को ब्रह्मत्व का साक्षातरूप बताया है–

''एषः भगवान् मणिराकाशमण्डलस्य, चक्रवर्ती खेचर-चक्रस्य, कुण्डलमाखण्डलदिशः, दीपको ब्रह्मण्डभाण्डस्य, प्रेयान् पुण्डरी-कपटलस्य, शोकविमोकः, कोकलोकस्य, अवलम्बो रोलम्ब-कदम्बस्य, सूत्रधारः सर्वव्यवहारस्य, इनश्च दिनस्य...।''

कवि ने प्रकृति के रमणीय दृश्यों के चित्रांकन में सूर्योदय, सूर्यास्त, तथा इसी प्रकार चन्द्रोदय एवं चन्द्रास्त आदि के हृदयस्पर्शी वर्णन में अपनी शब्द माधुरी फैलाई है। उपर्युक्त गद्यांश में जहाँ एक ओर सूर्योदय का मनोहारी वर्णन किया है, वहीं दूसरी ओर अस्ताचल की ओर जाते हुए सूर्य का वर्णन प्रशस्य है–

''जगतः प्रभाजालमाकृष्य, कमलानि–समुद्रम्, कोकान् सशोकीकृत्य, सकलचराचरचक्षुः सञ्चारशक्तिं शिथिलीकृत्य, कुण्डलेनेव निजमण्डलेन पश्चिमाशां भूषयन् वारुणीसेवनेनेव माञ्जिष्ठमाञ्जिमरञ्जितः अनवरत..।'' सादृश्यमूलक अर्थालंकार सहित।

कवि ने प्रकृति के भयावह :प में आंधी से समस्त चराचर जगत् के प्रभावित होने का वर्णन ध्यातव्य है–

''तावदकस्मादुत्थितो महान् झञ्झावातः, एकः सायं समय-प्रयुक्तः स्वभाववृत्तोऽन्धकारः, स च द्विगुणितो मेघमालाभिः झञ्झावातोद्धूतैः रेणुभिः शीर्णपत्रैः कुसुमपरागैः शुष्कपुष्पैश्च द्वैगुण्यं.... सहडहडाशब्दं दोधूयमानानां परस्सहस्रवृक्षाणां, वाताघातसंजात-पाषाणपातानां प्रपातानां, महान्धतमसेन ग्रस्यमान इव सत्वानां क्रन्दनस्य च भयानकेन स्वनेन कवलीकृतमिव गगनतलम्।''

उक्त उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि कवि न केवल प्रकृति के भयावह रूप के वर्णन में ही निष्णात थे बल्कि रोमांचकारी अर्थात् मधुर दृश्यों के वर्णन में भी बड़े पारखी थे।

भाषा माधुर्यः—

भारत-भूषण पं. अम्बिकादत्त व्यास का भाषा पर असाधारण अधिकार था। डॉ. चन्द्रकिशोर गोस्वामी के अनुसार प्राचीन समीक्षकों ने माघ के प्रथम नौ सर्गों को शब्दों का अपूर्व भण्डार कहा था–''नवसर्गगते माघे नव शब्दो न विद्यते'' किन्तु शिवराजविजय ने तो मानों माघ की कमी को भी अपने वाग्वैभव सम्पदा से पूर्णता प्रदान की है। शिवराजविजय की शब्द–सम्पदा का द्रष्टा तो निस्संदेह यह कह सकता है– **''स्वधीते शिवराजविजये नव शब्दो न हि विद्यते।।''**

डॉ. रुपनारायण त्रिपाठी के अनुसार मनोगत भावों को सहृदय संवेद्य बनाने का प्रमुख साधन भाषा को ही माना जाता है तथा भाषा की क्रमबद्धता या रचना–विधान को ही शैली भी कहा जाता है। अतः भावों को मूर्त रुप प्रदान करने का प्रमुख व सहज साधन 'शैली' है। अर्थ यदि काव्य की आत्मा है तो शब्द या शैली काव्य का शरीर। काव्य की ग्राहकता व मनोभावों की मनोहरता, स्थिरता तथा सूक्ष्मता शैली पर ही निर्भर है।''

पं. व्यास ने पदसंघटना और भाषा में महाकवि बाणभट्ट का अनुकरण किया है। जिस प्रकार से बाणभट्ट ने विन्ध्याटवी वर्णन में दीर्घसमासों का प्रयोग किया है ठीक

उसी प्रकार कविवर भारत–भास्कर पं. व्यास जी ने कोंकण देश के वर्णन में दीर्घ समासों का प्रयोग कर अपनी अप्रतिहत प्रतिभाप्रभा का परिचय दिया है–

''नासाग्रविषाणशाणनच्छलविहितगण्डशैलखण्डानां खड्गिनाम्, दोदुल्यमानद्विरेफदलपेपीयमानदानधाराधुरन्धराणां, सिन्धुराणाम् कृपा-कृपणकृपाणच्छिन्नदीनाध्वनीनगलतलगलत्पीनधारशोणित बिन्दुवृन्द-रञ्जित वारबाणसारसनोष्णीष धारणाकलिताखर्वगर्वबर्बराणां लुण्ठकनिकराणां च सर्वथा साक्षात्कारसम्भवः।''

इसी तरह कादम्बरी में विरह–वेदना से व्याकुल कादम्बरी के वर्णन में कपिंजल के मुख से पुण्डरीक के प्रति भर्त्सना–अवसर पर सरल और समासरहित पदावली का प्रयोग किया गया है, ठीक उसी प्रकार शिवराजविजय में भी सौवर्णी के विरह वर्णन में और गोरबटु के वर्णन में समासरहित और सरल पदावली का प्रयोग किया गया है। द्रष्टव्य है गौरब्रह्मचारी वर्णन की एक छटा–

''बटुरसौ आकृत्या सुन्दरः, वर्णेन गौरः, जटाभिर्ब्रह्मचारी, वयसा षोडशवर्षदेशीयः कम्बुकण्ठः, आयतललाटः सुबाहुः विशाल- लोचनश्च आसीत्।''

कवि कि भाषा में प्राचीन एवं अर्वाचीन दोनों प्रकार की शैली दृष्टिगोचर होती हैं। प्राचीन शैली का एक उदाहरण पठनीय है–

''कदलीदलकुञ्जायितस्य एतत्कुटीरस्य समन्तात पुष्पवाटिका, पूर्वतः परमपवित्रपानीयं परस्सहस्रपुण्डरीकपटलपरिलसितं पतत्रिकुल-कूजितपूजितं पयः पूरपूरितं सर आसीत्।

कवि ने भावों की कुशल अभिव्यक्ति के लिए पदों में वीप्सात्मकता का प्रयोग कर अवान्तरकालीन रचनाकारों को नव प्रेरणा दी है। यथा– उत्साह व प्रसन्नता में ''हता हता हतेति हिन्दुहतकाःत्वरा में ''हरिद्रा हरिद्रा, लशुनम्, लशुनम्, चाटुकथन में ''आम् आम् आम्'', भय या त्रास में ''सन्धिः सन्धिः'' प्रशंसा में ''गहनैः–गहनैः कोमलकोमलैः, मधुरमधुरैः वाचांविलासैः'' आदि।

कवि हिन्दी एवं उर्दू भाषी शब्दों का संस्कृतीकरण करने में बड़े ही विलक्षण एवं पारखी थे। यथा–

एक–एक ग्यारह होते हैं–एकैकमप्येकादश भवन्तीति। (एकता में ही शक्ति है)

आपके मुंह में घी शक्कर–'घृतेन स्नातु भवद्रसना'।

बिना बाल बांका हुए चला गया–अत्रुटितकेशाग्रो यातः।'

द्रष्टव्य है कवि के क्रियापदों का भाव सौन्दर्य–

''अथ फलकमिदभवतारयति, करे करोति वक्षसि धत्ते, निपुणमीक्षते, गाठं चुम्बति, चिरमालिंगति, शिरसा च वहति।''

इस प्रकार शिवराजविजय में कवि ने भावों के अनुसार ही भाषा माधुर्य का प्रयोग किया है साथ ही नव शब्दों एवं अन्य भाषी शब्दों के संस्कृत रुपान्तकार में भी काफी सफलता पाई है।

अलङ्कार सौन्दर्यः–

वेद न केवल समस्त विधाओं के ही मूल स्रोत हैं। प्रत्युत् अलङ्कार शास्त्र के भी उद्गम स्थान माने जाते हैं। ऋग्वेद के इस मंत्र में उपमा का वर्णन द्रष्टव्य है–

''उतत्वः पश्यन्न ददर्श वाचं उतत्वः शृण्वन् न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्त्रे जायेव पत्ये उशती सुवासाः।।''

अग्निपुराण में अलंकार का लक्षण–

''काव्यशोभाकरान् धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते।''

अर्थात् आचार्य भामह ने काव्य के शोभाधायक तत्वों को अलंकार कहा है।

ध्वन्यालोक प्रणेता मम्मटाचार्य के मतानुसार जिस प्रकार हारादि शरीर के अंगों को सुशोभित करते हैं, उसी प्रकार काव्य शरीर में अनुप्रास उपमादि अलंकार काव्यात्मा को उपकृत करते हैं–

'उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।
हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः।।''

शिवराजविजय में सरसा एवं सुवर्णा कविताकामिनी के अधिष्ठाता भारतरत्न पं.

अम्बिकादत्त व्यास ने अपनी यशस्विनी रचना में अलंकारों के चमत्कार से सहृदयों के मन को समाकर्षित किया है। उक्त रचना के प्रथम विराम में उदयपुर मण्डल के परिचय प्रसंग में क्षत्रियकुलाङ्गनाओं के मनोरमवर्णन में उपमा एवं यमक अलङ्कार की कमनीय छटा बिखेरी है–

''यदीयचित्रपूरदुर्गे परसहस्राः क्षत्रियकुलांगनाः शारदा इव विशारदाः, अनसूया इवानसूयाः यशोदा इव यशोदा, सत्या इव सत्याः, रक्मिण्य इव रुक्मिण्यः, सुवर्णा इव सुवर्णाः।''

शब्दालंकारों में सामान्यतया अनुप्रास अलंकार तो मानो कवि का क्रीतदास बन गया हो। यही कविप्रिय अलंकार रहा है। तभी तो कठोर से कठोर एवं मृदु से मृदु भावों की कुशल अभिव्यक्ति को भी अनुप्रासमयी शब्द माला में साधिकार पिरो पाएँ हैं। ध्यातव्य हैं तीन उदाहरण–

(1) सामान्य वर्णन में अनुप्रास छटा–

''यत्र प्रान्तप्ररूढां पद्मावलीं परिमर्दयन्ती पद्मेव द्रवीभूता पयः पूरप्रवाहपरम्पराभिः पमा प्रवहति।''

(2) कठोर भावाभिव्यक्ति में अनुप्रास–

''अस्ति कश्चन धैर्यधारिधुरन्धरैः धर्मोद्धारधौरेयैः, सोत्साहसाहस चंचञ्चन्द्रहासैः सुशक्तिसुशक्तिभिः, सद्यश्छिन्नपरिपन्थिगलगलच्छोणि-तच्छुरितच्छन्नच्छुरिकैः, भयोद्भेदनभिन्दिपालैः, स्वप्रतिकूल-कुलोन्मूलनानुकूलव्यापारव्यासक्तशूलैः।''

(3) कोमल भावाभिव्यक्ति में अनुप्रासः–

''मधु विधुरयत्, मरन्दं मन्दयत्, कलकाकलीकलनपूजितं कोकिलकुलकूजितम्।''

कवि प्रथम विराम के द्वितीयनिश्वास में प्रताप दुर्ग का अति उदात्त वर्णन कर उदात्त अलंकार का प्रयोग किया है, जो नितरां प्रशस्य एवं वर्ण्य है–

''..........कथं तोरण-दुर्ग-भोग-भाजन तामकलयिष्यत्? कथं तोरण-दुर्गाद् दक्षिण-पूर्वस्यां पर्वतस्य शिखरे महेन्द्र-मन्दिर-खण्डमिव धर्षितारि-वर्ग डमरु-हुडुक्कार-तोषित-भर्गं रायगढनामकं महादुर्गं व्यरचयिष्यत्?

वीर विक्रमादित्य के संदर्भ में मुनि के कथन में सहोक्ति अलंकार की छटा पठनीय एवं वर्ण्य है–

''अथ स मुनिः भगवन्! धर्येण, प्रसादेन, प्रतापेन, तेजसा, वीर्येण विक्रमेण, शान्त्या, श्रिया, सौख्येन, धर्मेण, विद्यया च सममेव परलोकं सनाथितवति तत्र भवति वीरविक्रमादित्ये..........।''

तम्बाकू पीते हुए यवनों के प्रति कवि की उत्प्रेक्षा रसिकजनों के चित्त को आकर्षित करती है–

''तत्र क्वचित् खट्वासु पर्यंकेषु चोपविष्टान्................ मुखाग्निसंयोगं जीवनदशायामेवाकलयतः।''

अनेक संभावनाओं का वर्णन होने तथा 'इव' शब्द का उत्प्रेक्षा वाचक होने से शिवराजविजय के प्रथम विराम के प्रथम निश्वास में उत्प्रेक्षा अलंकार का मनोरम वर्णन अंकनीय है–

''समुदिते यामिनी-कामिनी-चन्दनबिन्दौ इव इन्दौ, कौमुदी-कपटेन सुधाधारामिव वर्षति गगने, अस्मन्नीति वार्ता शुश्रूषुषु इव मौनमाकलयत्सु पतंग-कुलेषु।''

कवि ने अर्थालंकारों में उपमा-अलंकार का अपने काव्य में बहुलता से प्रयोग किया है। लुप्तोपमा की मणिमाला देखिए–

''अथ सहासं सोऽब्रवीत्- को नाम खपुष्पायितः शशशृंगायितः, कमठीस्तन्यायितः सरीसृपश्रवणायितः, भेकरसनायितः, वन्ध्यापुत्रायि तश्च शिवोऽस्ति? य एवं रक्षिष्यति।''

इसी प्रकार रूपक, विभावना, विशेषोक्ति, सहोक्ति, अनुप्रास, यमक स्वभावोक्ति, दृष्टान्त एवं संभावना आदि अलंकारों का भी यथास्थान प्रयोग किया गया है।

रसयोजनाः–

संस्कृत काव्यशास्त्र में रस इतिहास को सर्वप्राचीन सिद्ध किया है। तैत्तरीयोपनिषद् में लिखा है– ''रसो वै सः, रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति। इसी प्रकार भगवान् वेदव्यास जी ने रस को काव्य का प्राण सिद्ध किया है–

''वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्॥'' (अग्निपुराण) आचार्य भरत ने विभाग, अनुभाव और व्यभिचारी के संयोग से रस की निष्पत्ति स्वीकारी है–

''विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।'' अग्नि पुराण में कहा गया है कि जैसे लक्ष्मी त्याग के बिना असंभव है ठीक वैसे ही रस के बिना प्राणी की शोभा असंभव है। अग्निपुराण में नवरसों का उल्लेख करते हुए लिखा है–

''रगोद्भवः स शृङ्गारो रौद्रस्तैक्ष्ण्यात् प्रजायते।
वीरावष्टम्भजः सङ्कोचभूर्वीभत्स इष्यते॥
शृङ्गाराज्जायते हासो रौद्रात्तु करुणो रसः।
वीराच्चाद्भुतनिष्पत्तिः स्याद्वीभत्साद्भयानकः॥
शृङ्गारहास्यकरुणा रौद्रवीरभयानकाः।
वीभत्साद्भुतशान्ताख्याः स्वस्वभावोद्भवारसाः॥''

इसी प्रकार आचार्य मम्मट ने रस का लक्षण इस प्रकार बताया है–

''कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।
रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः॥
विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।
व्यक्तः सः तैर्विभावाद्यैः स्थायीभावः रसः स्मृतः॥''

अर्थात् संसार में जो कारण, कार्य और सहकारी कारण होते हैं वे जब नाटक और काव्य में रति आदि स्थायीभाव के होते हैं, तब उन्हें विभाग, अनुभाव और व्यभिचारी भाव कहते हैं और उन विभावादि के द्वारा व्यक्त स्थायीभाव 'रस' कहलाता है।

आलोच्य कृति 'शिवराजविजय में काव्य शास्त्र प्रणेताओं की दृष्टि से 'वीररस' को अंगी रूप में प्रस्तुत किया गया है तथा अन्य रसों को उसके अंगभूत के रूप में स्वीकारा है। यदि हम समग्र दृष्टि से ग्रन्थ का अध्ययन कर विश्लेषण करें तो यह स्वतः आकलन हो जाएगा कि इसमें 'देशप्रेम' रस की काफी बहुलता है।

उपन्यास में अपजलखान एवं चन्द्रखान के वध में, विजय दुर्ग की विजय एवं शास्तिखान आदि पर शिवाजी द्वारा किए गए आक्रमण के प्रसंग में वीर रस का अच्छा परिपाक हुआ है।

छत्रपति शिवाजी न केवल युद्धवीर के रूप में बल्कि दानवीर एवं धर्मवीर नायक के रूप में जगजाहिर रहे हैं।

अफजलखाँ के सैनिकों को गौरसिंह द्वारा मारे जाने के वर्णन में वीर रस की निष्पत्ति हुई है।

यथा– **''वत्स गौरसिंह! अहमत्यन्तं तुष्यामि त्वयि, यत् त्वमेकाकी अपजलखानस्य त्रीनश्वान् तेन दासीकृतान् पञ्च ब्राह्मणतनयांश्च मोचयित्वा आनीतवानसीति।''**

तानरङ्ग द्वारा गायन-सभा में शिवाजी के संदर्भ में उल्लेख करने में भी वीर रस प्रकट हुआ है–

''आगत एष शिववीर इति भ्रमेणापि सम्भाव्य अस्य विरोधिषु केचन मूर्च्छिताः निपतन्ति, अन्ये विस्मृतशास्त्रास्त्राः पलायन्ते......।'' और भी

''...स एव राजनीतौ निष्णातः, स एव सैन्धवारोहविद्यासिन्धुः स एव चन्द्रहासचालने चतुरः, स एव मल्लविद्यामर्मज्ञ..........।''

इसके अतिरिक्त भी गौरसिंह और यवन-युवक के युद्ध वर्णन में तथा अन्य काफी स्थलों पर वीर रस का प्रयोग किया गया है।

इसी प्रकार उदयपुराधीश के पत्र, राजा जयसिंह व शिवाजी के वार्ताप्रसंग, योगिराज एवं ब्रह्मचारिगुरु के वार्तालाप प्रसंग तथा अन्य स्थानों पर भी वर्णनानुसार स्वदेश प्रेम-रस का सुन्दर चित्रांकन किया गया है।

सौवर्णी और रघुवीर सिंह तथा सौवर्णी व उसकी सखियों के वार्तालाप में श्रृंगार का रसास्वादन देखा जा सकता है।

सौवर्णी की संखियों का यह संवाद श्रृंगारिता की अनुभूति कराता है–

''सौवर्णि! सत्यं कथयति विलासिनी। यदि नाम तुभ्यं प्रेमवार्ता आत्मीयोचितालापाश्च न रोचन्ते,.............।''

इसी प्रकार रसनारी और शिवाजी के संवाद में भी स्वल्प सा श्रृंगार देखा जा सकता है। दिल्ली कारागार में क्रोधित शिवाजी के वर्णन में रौद्र रस की छटा द्रष्टव्य है–

''अथ महाराष्ट्रराजो दृष्ट्वैतत् लोहितवदनः कोपस्फुरदधरो जाज्वल्यमाननयनो जिधत्सन्निव ब्रह्मण्डमण्डलम्, भ्रवोराकुंचनेन स्फोटयन्निव गगनतलम्, स्तन्यजीव माल्यश्रीकं चावादीत्-पश्य पश्य........... महाराष्ट्रा अन्यानपि चातुरीं शिक्षयन्ति।''

यवन-वर्णन में बीभत्स रस का साम्राज्य मननीय है–

''चिरजलानवगाहनोद्भूतमहामलावलिमलीमसैः मद्यस्वेदनिष्ठ्-यूतकर्णकिट्टसिङ्घाणदूषिकादिविविधमललिप्तचिराक्षालितमलिन-वसनैः..........।''

वात्सल्य रस की मनमोहिनी शोभा अंकनीय है–

''हन्त! हत भाग्या सा बालिका, या अस्मिननेव वयसि पितृभ्यां परित्यक्ता अवयवोरपि अदर्शनेन क्रन्दनैः कण्ठं दर्शयति।''

श्रृंखला की इसी कड़ी में माया जिह्व व पद्मिनी प्रसंग में हास्य रस का वर्णन किया गया है। उपन्यास में कहीं कहीं करुण रस की मन्दाकिनी भी प्रवाहित हुई है। यथा–

''माता च तव ततोऽपि पूर्वमेव कथवशेषा संवृत्ता, यमलौकभ्रातरौ च तव द्वादशवर्षदेशीयावेव आखेट व्यसनिनौ महार्हभूषण भूषितौ तुरगावरुह्य वनं......त्वं तु मम यजमानस्य पुत्रीति स्वपुत्रीव मयैव सह नीता वर्द्धयसे च।''

परित्यक्ता सौवर्णी के वर्णन में भयानक रस का चमत्कार पठनीय है। **''.........सवेगमत्युष्णं दीर्घं निःश्वसन्ती, मृगीव व्याघ्राऽऽघ्राता, अश्रुप्रवाहैः स्नाता, सवेपथुः कन्यकैका अङ्के निधाय समानीता।''**

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि इस उपन्यास में वीर रस व स्वदेश प्रेम रस को महनीय रूप में प्रस्तुत कर करुण, रौद्र, वीभत्स, शृंगार शान्त एवं अद्भुतादिरसों का सम्यकतया निरुपण किया गया है। उपन्यास में सौन्दर्यमयी एवं सामयिक ऐतिहासिक वर्णन के कारण वैदर्भी व गौडी रीतियों का प्रयोग हुआ है।

संवाद-सौष्ठवः–

आधुनिक युग में उपन्यास आदि नव विधाओं में संवाद-योजना का महत्त्व सर्वातिशायी है। पं. व्यास प्रणीत 'शिवराजय विजय' के पात्रों में संवाद-सौष्ठव

स्वाभाविक, सरल, रोचक एवं हृदयहारी के रूप में चर्चित है। प्रायः सभी संवाद प्रकरणानुकूल तथा पात्रों के विविध मनोवृत्तियों के दिग्दर्शक हैं।

द्रष्टव्य है शिवराज विजय के नवम निश्वास में एक उदाहरण–

महाराजः–भद्रे, नास्माभिरीदृशा निगडैः किन्तु प्रेम्णा बद्ध्यन्ते।

रसनारी– कतमोऽसौ भ्राता?

महाराजः–कुमारी मायाजिह्नः।

रसनारी– कथमत्रायातः?

महाराजः–सोऽस्माभिर्योद्धुमायात आसीत्।

इसी प्रकार रसनारी के साथ वार्ता में शिवाजी नारियों के लिए विनम्रता और शिष्टाचार का प्रदर्शन करता है। मायाजिह्वा के साथ ही उसका संवाद वात्सल्यपूर्ण है।

प्रस्तुत उपन्यास में तात्कालिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और भौगोलिक परिस्थितियों का उत्कृष्ट वर्णन किया गया है। कवि ने तात्कालिक हिन्दू राष्ट्र की दुर्दशा और यवनशासकों के भयंकर अत्याचारों का यथार्थ आइना बड़े ही सुन्दर ढंग से उपनिबद्ध किया है।

इस प्रकार इन साक्ष्यों से यह प्रमाणित हो जाता है कि कवि ने अपने चर्चित उपन्यास 'शिवराजविजय' की रचना के अध्ययन के पश्चात् आधुनिक संस्कृत साहित्य में कविशेखर व्यास ''आधुनिक बाण'' के नाम से अभिहित किये जा सकते हैं।

पं. अम्बिकादत्त व्यास का रूपक साहित्य :–

संस्कृत अभिनवशैली के जनक पं. व्यास न केवल ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में प्रत्युत् ''काव्येषु नाटकं रम्यं' कालिदास के पीयूषवाक्य को आत्मसात् कर एक कुशल नाटककार के रूप में भी आप ख्यातनाम रहे हैं।

पं. व्यास प्रणीत ''सामवतम्'' रूपक के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने न केवल सामवतम् प्रत्युत् 'धर्माधर्मकलकलम्' एवं 'मित्रालापः' भी उनके नाट्य साहित्य में उल्लेखनीय भूमिका अदा करते हैं। व्यास जी के सम्पूर्ण नाटकों का ''मन की उमंग'' नाम से प्रकाशन किया गया था। गौरतलब है कि पं. व्यास प्रणीत नाटकों का अभिनय मुजफ्फरनगर की धर्म सभा में आयोजित किया गया था।

ध्यातव्य है कि कवि के हिन्दी रूपकों में प्रायः ''गोसंकट, भारत-सौभाग्य, ललिता नाटिका, 'कलियुग और घी' तथा 'मन की उमंग' विशेष रूप से परिगणनीय हैं। यहाँ 'मन की उमंग' में 5 रूपकों का संकलन किया गया है। यथा– (1) भारतधर्म (2) धर्म पर्व (3) संस्कृत-संताप (4) देवपुरुष दृश्य एवं (5) जटिल वणिक्।

सर्वप्रथम हम कवि के हिन्दी भाषा में गुम्फित रूपकों की चर्चा करेंगे–

(1) ललिता नाटिका :–

इस नाटिका का श्रीगणेश वि.सं. 1935 में किया गया, किन्तु यह कृति प्रकाश में 5 वर्ष बाद आ पाई। इसका प्रकाशन हरि प्रकाश यंत्रालय काशी में किया गया था। उक्त नाटिका का कथ्य बालगोपाल श्रीकृष्ण और ललिता गोपिका का शृंगार वर्णन ललित गीतों और सरस संवादों में वर्णित हुआ है। हिन्दी भाषा में निबद्ध यह नाटिका ब्रजभाषा के माधुर्य से, शृंगार एवं हास्यपरक रसपेशल गीतों से बहुत रमणीय कृति बन पड़ी है। इसमें विशेष रूप से ललिता गोपिका की विरह वेदना, निशीथवेला में गोवर्धन वेश में कन्हैया से भेंट, कान्तश्री गोवर्धन का सहसा कुपित होना, तथा देवर्षि नारद का पदार्पण एवं सर्वत्र श्रीकृष्ण को सनातन ब्रह्मा जी के अवतार और गोपियों को देवियों के अवतार रूप में सिद्ध करना, इस नाटिका की प्रमुख घटनाएँ हैं। इसमें शृंगार और हास्य रसमय रचना ब्रजभाषा में गुम्फित एक गीतप्रधान रचना है। देवर्षि नारद जी द्वारा भक्ति भाव समन्वित भगवान् श्रीकृष्ण जी की द्रष्टव्य है एक स्तुति–

'अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपब्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णब्रह्म सनातनम्।।'

इसकी समाप्ति शान्त रस के साथ होती है। उक्त नाटिका के गेय गीत ललित, मधुर एवं चित्ताकर्षक हैं। विदाई वेला में श्रीकृष्ण से गोपी...... हमारी गली आ जाना के भावों को अभिव्यक्त करती हुई कहती है–

''सब रोज की बात कहे न कछु
कबहूं तो हमें हरसाया करो।
अति प्यारी तिहारी अनेक अहैं,
पै लउ तऊ चित लाया करो।

मनमोहिनी मूरति को दरसाई,
के नैनन को सरसाया करो।
पिय प्यारे छली हमरी हू गलिन में
भूलि कै तो भला आया करो॥"

इस नाटिका के संवादों में अधिकांशतः वक्रोति एवं चुटीलापन दृष्टिगोचर होता है।

(2) गोसंकट नाटक :–

कवि ने गो-वध रोकथाम के लक्ष्य को आत्मसात् कर इस नाटक का सूत्रपात किया। गौ-रक्षण एवं पोषण प्रत्येक हिन्दू का अपना कर्त्तव्य है। भारतीय संस्कृति में गौ-माता के रूप में जानी जाती है, किन्तु अफसोस तत्कालीन समय में मुस्लिम वर्ग हिन्दुओं को उत्तेजित करने एवं चिढ़ाने के लिए गौ-वध का जघन्य एवं घिनौना कर्म किया करते थे। इस नाटक का कथानक कवि ने अकबर बादशाह के समय से लिया है। हिन्दू-वर्ग पर उस दौरान मुसलमानों द्वारा किये जा रहे अत्याचारों का मर्मस्पर्शी वर्णन किया गया है। एक बार जब हिन्दु-मुस्लिम द्वेष बढ़ जाता है तो अकबर के दरबार में दोनों पक्षों को आमंत्रित किया जाता है। अन्ततोगत्वा सम्राट् द्वारा गौ-वध के निषेध का आदेश दे दिया जाता है। इस नाटक में कवि ने मुस्लिम धर्म के अत्याचारों के प्रति तीव्र आक्रोश के साथ ही गायों की महनीय उपयोगिता का भी विशेष वर्णन किया है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यदि गौ-माता को घर में रखकर उसका पालन-पोषण करते हुए उसके दूध, मक्खन एवं घृत का उपयोग करें तो व्याधियाँ पास ही नहीं आ पायेंगी। गौ-मूत्र, गो-मय आदि को भी हम औषधि के रूप में प्रयोग करते हैं।

उल्लेखनीय है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के विशेष प्रोत्साहन से ही इस नाटक की रचना वि.सं. 1939 में की गई। इसका प्रकाशन खड्गविलास प्रेस सम्वत् 1941 में किया गया।

इस नाटक के संवाद प्रायः ओजस्विनी पूर्ण भाषा में निबद्ध हैं। गौ-माता की प्रशस्य उपयोगिता का चित्रांकन करते हुए कवि लिखता है–

"धनि धनि भारत की निधि गैया।
दूध पिबाई सबनि प्रतिपालति

ज्यों बालक की मैया।
दही मलाई माखन खोवा
दूध घीव उपजैया।
सब पकवान साज कों सजि-सजि
आपु घास चरैया॥ धनि॥''

गोकुशी भारतवासियों के ही प्राण लेने का उपक्रम है। इस नाटक में 'गो-भक्ति' को प्रमुखता से दर्शाया है।

(3) भारत सौभाग्य नाटक :–

हिन्दी भाषा में निबद्ध पं. व्यासकृत 'भारत सौभाग्य नाटक' नाटक साहित्य की एक उत्कृष्ट कृति है। पं. श्रीकृष्णमिश्र प्रणीत 'प्रबोध-चन्द्रोदय नाटक' की भांति यह रचना एक भावात्मक रूपक है। जिसमें अमूर्त पात्रों को मूर्त रूप में चित्रित किया गया है। इस रचना में भारत-सौभाग्य, भारत-दौर्भाग्य, विषयभोग, प्रताप उत्साह तथा शिल्प पुरुष पात्रों के रूप में परिगणनीय हैं। जबकि मूर्खता, शिक्षा, एकता, भारत-पताका, फूट, अंग्रेजी पताका, राजभक्ति, यंत्रविद्या, उदारता तथा दया स्त्री पात्र हैं।

नाटककार का कथ्य है कि अंग्रेज-शासन से पहले मुगलों का एक छत्र साम्राज्य था। इस शासन व्यवस्था में प्रत्येक भारतवासियों की दर्दनाक दुर्दशा पर करारा व्यंग्य किया है। तुलनात्मक दृष्टि से अंग्रेज-शासन को मुगलशासन की अपेक्षा सुशासन सिद्ध किया। मूलतः इस नाटक की सर्जना महारानी विक्टोरिया के रजत-जयन्ती के पावन अवसर को लक्ष्य कर लिखा गया था। प्रकृत नाटक में भाषा की प्रौढ़ता, प्राञ्जलता व सरसता द्रष्टव्य है। इस नाटक के सृजन से कृतिकार का बहुभाषाविद् पक्ष उभरता है। नाटक की समाप्ति भरत-वाक्य से होती है। नाटक का प्रकाशन खड्ग विलास प्रेस से किया गया है।

(4) कलियुग और घी :–

पण्डित प्रवर व्यास ने इस स्वल्प से रूपक के माध्यम से हिन्दू धर्म में सामाजिक एवं धार्मिक पक्षों पर सुधार का तथ्य सामने रखते हुए तथा 'बाल-विवाह' एवं

'मूर्तिपूजा' जैसी प्रथाओं पर करारा व्यंग्य करते हुए विभिन्न पद्यों एवं संस्कृत वाक्यों के माध्यम से इन प्रथाओं का खंडन किया है। यदि हम वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण करें तो यह स्वयं सिद्ध है कि आज भी बाल-विवाह जैसी कुप्रथा के कारण न जाने कितने घरों में बर्बादी, भुखमरी एवं पारिवारिक पृष्ठभूमि के विनाश का ताण्डव नृत्य होता जा रहा है। इसी प्रकार 'मूर्तिपूजा' के स्थान पर यदि हम अपनी आत्मा को स्वच्छ रखकर दीन-दुखियों की सेवा करें उनके सुख-दुःख में भागीदार बनें तो काफी अच्छे परिणाम सामने आ सकते हैं।

इस रूपक में कवि ने विशेष रूप से घी में मिलावट के कारण हृदय की पीड़ा को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया गया है। कवि ने सटीक शब्दों में सिद्ध किया है कि कलियुग से त्रस्त घृत अन्ततः श्रीकृष्ण की शरण में चला जाता है जहाँ एकता और उत्साह उसकी रक्षा करके सनातन धर्म को बचाते हैं। उक्त रूपक का प्रकाशन नारायण प्रेस, मुजफ्फरपुर से सम्वत् 1942 में किया गया।

(5) मन की उमंग :–

महामहोपदेशक पं. अम्बिकादत्त व्यास ने 'मन की उमंग' नामक संग्रह में छोटे-छोटे एकांकी रूपकों का उत्कृष्ट संकलन किया है। उल्लेखनीय है कि इनमें 5 हिन्दी तथा 2 संस्कृत रूपकों का समावेश है। ये सभी रूपक धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत हैं, जिनकी रचना का मूल उद्देश्य धार्मिक उत्सवों पर कुशल अभिनय प्रस्तुति है। इनमें 'भारतधर्म' रचना में भारतीय-भाषा, संस्कृत एवं सनातन धर्म पर पाश्चात्य सभ्यता के बढ़ते प्रभावों की सविस्तार चर्चा की है।

'धर्मपर्व' नामक रचना में संवादात्मक शैली में स्वदेशी कर्म, भारतीय धर्म एवं संस्कृति का संरक्षण एवं संवर्धन का भाव मुखरित हुआ है। 'संस्कृतसन्ताप' रचना में कवि की मानसिक पीड़ा है कि पूर्व में उर्दू तथा तत्काल में अंग्रेजी का बोलबाला होने के कारण देववाणी एवं भारतीय संस्कृति का निःसंदेह ह्रास हुआ है। कवि का मुख्य उद्देश्य संस्कृत का पुनः डिंडिमघोष कर भारतीय संस्कृति को संजोये रखना है।

'देवपुरुष-दृश्य' रूपक में भारत के पुरातन गौरव का आधार-स्तम्भ तथा धार्मिक

प्रवृत्ति के संपोषक ब्राह्मणों की महत्ता प्रतिपादित की है। वेदों में भी ब्राह्मण को शीर्ष स्थान पर रखा है– ''ब्राह्मणस्य मुखमासीद्बाहूराजन्यकृत.........''। इसी प्रकार जटिल-वणिक' रूपक में यवनशासन की अपेक्षा अंग्रेज शासन की उत्कृष्टता का वर्णन किया गया है। प्रस्तुत रूपक में एक जटिल तपस्वी और एक वणिक् के वार्तालाप को लेखनी का माध्यम बनाया गया है।

इसी प्रकार 'मन की उमंग' रचना में ही संस्कृत के दो रूपकों 'धर्माधर्म-कलकलम्' तथा 'मित्रालापः' का जिक्र किया गया है।

सामवतम् नाटक :–

संस्कृत नाट्य-शास्त्र में 'सामवतम्' नाटक का स्थान महत्त्वपूर्ण एवं वर्ण्य है। उल्लेखनीय है कि स्कन्द पुराण के ही एक पौराणिक आख्यान को नाटक की कथा का मुख्य आधार बनाकर सामवान् नामक एक ऋषिपुत्र का नारी में परिवर्तित होकर उसके ही पूर्व मित्र 'सुमेधा' से विवाह का वृत्तान्त मुखरित हुआ है। ''सामवतम्'' की व्युत्पत्ति इस प्रकार है–

''सामवन्तम् अधिकृत्य कृतं नाटकम्''। यहाँ पर ''सामवत्'' शब्द से ''अधिकृत्य कृते ग्रन्थे'' सूत्र से अण् प्रत्यय कर सामवत् शब्द निष्पन्न हुआ तथा नपुंसक लिंग प्रथमा विभक्ति एकवचन में ''सामवतम्'' रूप सिद्ध हुआ जो कि नाटक का प्रतिपाद्य 'सामवान्' पर आधारित है।

एक बार सारस्वतात्मज सामवान् पिता के निर्देश पर अपने मित्रवर सुमेधा के साथ विदर्भराज के पास विशेष रूप से धन की इच्छा को लक्ष्य कर जाता है। किन्तु वहाँ होलिका के मनोरंजन में मत्त दरबारियों के जाल में फँसकर उसके ही मित्र सुमेधा की पत्नी की वेशभूषा धारण कर उसे सीमन्तिनी की पूजा विशेष को अंगीकार कर बरबस स्त्री रूप में परिवर्तित होने के अनन्तर 'सामवती' प्रणयानुरोध में अग्रसर होती है तथा अन्ततोगत्वा सुमेधा के साथ उसका विवाह सम्पन्न हो जाता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि इस नाटक में ''सामवान्' एक उत्कृष्ट एवं सर्वोत्तम चारित्रिक पृष्ठभूमि में खरा उतरता है। अतः नाटक का नामकरण ''सामवतम्'' प्रशस्य

एवं अनुपमेय है। इस नाटक में 6 अङ्क हैं। नाटक का मुख्य नायक सुमेधा धीर-प्रशांत कोटि का है। शृंगार अंगीरस तथा अंगरूप में अन्य रसों का भी यथास्थान प्रयोग किया गया है। कवि ने एक नीरस पौराणिक आख्यान को सरस एवं हृदयग्राही बनाकर अपने प्रखर कवित्व-कौशल का बखूबी परिचय दिया है। कवि ने स्कन्द पुराण के ब्रह्मोत्तर खण्ड की एक कथा को अपने कथानक का लक्ष्य बनाकर ''सामवतम्'' नाटक की सर्जना की। इस पंक्ति का भाव 'सामवतम्' नाटक की इन पंक्तियों से स्वतः परिलक्षित हो जाता है–

''स्कन्दपुराणीय– ब्रह्मोत्तरखण्डे सोमव्रतप्रकरणे सीमन्तिन्या पार्वतीधिया पूजितः पुरुषोऽपि सामवांस्तद्भक्तिमहिम्ना स्त्रीत्वं लेभे इति संक्षिप्ताऽस्त्याख्यायिका। सैव समूलेति पवित्रेति मनोहरेति अद्भुतेति भिक्षादायिनीति भक्तिपर्यवसायिनीति च मया तामेवाऽऽश्रित्य बहूनि सहायकानि रसो जृम्भकाणि कौतुकोत्पादकानि कार्यनिर्वहणक्षमाणि बिन्दुप्रकरीपताकास्थानकादि-संघटकानि पात्राणि प्रकल्प्य विषयममुमंक षट्के विभज्य नाटकमिदं घटितम्।''

इस कथानक का मुख्य उद्देश्य है 'सोमवारव्रतवर्णने सीमन्तिनी-कथावर्णनम्' कथा के अनुसार सीमन्तिनी के पति के नदी में डूब जाना तथा सोमवार व्रत के प्रभाव से उसे पुनः प्राप्त हो जाना।

नाट्य रचना में चरित्र-चित्रण की महती भूमिका होती है। नाटक में नाटककार के सामने यह भी एक समस्या बनी रहती है कि वह चरित्र-चित्रण पक्ष को विस्तारित रूप न देकर संक्षिप्त एवं केन्द्रीभूत को प्रमुखता दे।

यद्यपि नाटक के कथानक में नैक घटनाएं घटित होती रहती हैं किन्तु वे उसके पात्रों के बाह्यरूप को ही प्रभावित करती हैं न कि आन्तरिक रूप को। नाटककार व्यास जी नाट्य के माध्यम से भारतीय संस्कृति को पुष्पित एवं पल्लवित देखना चाहता है।

इस नाटक में इन्दुवदना, मदालसा, भावकलावती नामक नर्तकी, बन्धुजीव, वसन्तक, भिक्षुक और ब्रह्माचारी पात्रों में संगीत कला को उजागर किया गया है। कवि ने चरित्र चित्रण को मध्यनजर रखते हुए 'आकाशभाषित' और 'स्वागत-कथन' जो कि

संस्कृत नाटकों में प्रचलित है, इसका भी बखूबी प्रयोग किया है। कवि के पात्र चरित्र-चित्रणों में विलक्षण और संयम दिखाई देता है तथा कवि ने अपनी गम्भीर प्रकृति के अनुरूप आदर्श पात्रों का चयन किया है। पात्रों में सजीवता और वैयक्तिकता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। वर्णनकला में कवि का उत्कृष्ट कल्पनावैभव प्रकट हुआ है–

'संसारतमसां स्तोमं हन्ति धावन् कलाधरः।
न तु स्वाङ्के समालग्नं यतो विज्ञाः परार्थिनः।।'

पं. व्यासजी ने इस नाटक में संवादतत्त्वों का बखूबी चित्रांकन किया है। वैसे भी संवादत्तत्व नाटक का मूल भूत तत्त्व होता है। संवादों से ही देशकाल आदि का परिचय होता है। जैसे सुमेधा द्वारा सामवान् से कहना–

''पश्यैतत् विपिनम्''

सामवान् उत्तर देते हुए कहता है–

''सत्यं विदर्भविषय एषः''

उपर्युक्त संवादों से स्वयं सिद्ध है कि पात्र विदर्भदेश में जा चुके हैं। इस नाटक के अधिकांश संवाद सर्वश्राव्य हैं, यथा बन्धुजीव और कलि के वार्तालाप की एक झलक–

नैपथ्यः– अरे! कस्त्वं मुनीनामाश्रमसमीपे क्रूरं गर्जसि?

कलिः– अरे! रे ! भ्रातरं भ्रूणहत्याया, मद्यपानस्य मातुः गौ-हिंसायाः गुरुवरं कलिं वेत्सि न मूर्खः।

नैपथ्यः– तद् गच्छ शौण्डिकालयम्। मुनिमण्डले ते क्व स्थानम्।

कलिः– अस्ति, अस्मिन्नेव दुर्वासस उटजे मम प्रियमन्त्री क्रोधो निवसति। तत्त्रैव गच्छामि।

इसी प्रकार वसन्त महोत्सव के समय राजसभा राजनर्तकी के हास्य विनोद का प्रसंग है। द्रष्टव्य है पं. व्यास के शब्दों में एक छटा–

राजा– अस्तु, किंचिद् वर्णय तावद् भावकलावतीम्।

वसन्तक– नं आणवेदि वअस्समहाराओ (इति स्वीकृत्य संस्कृतमाश्रित्य) हंसीशोभा

कलयति गतौ शशिवदनेयम्।

लोलन्मुक्ता प्रवालामलमणिरचितस्रग्धरा भाति यस्याः श्रीः।

अमात्यः– अहो किमिदं छन्दः ?

वसन्तकः– अच्चरिअं ण आणिदं मंअदा एदं विसमं छन्दो जा पडिपदं अणं जेव्व होदि।

अमात्यः– अथ प्रतिपदमेषां छन्दसां किं नाम?

वसन्तकः– अमच्च। पडिपदं सुमरिदं जेव्व।

इस नाटक में उच्च वर्गीय पात्रों की भाषा संस्कृत तथा निम्नवर्ग की भाषा प्राकृत है। नाटक के संवादतत्त्व मर्मस्पर्शी, सुसंगठित एवं स्तरीय हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि यह सुखान्त नाटक के रूप में लब्धप्रतिष्ठ है तथा विशेष रूप से इस नाटक में शास्त्रीय पद्धति के गीत एवं नृत्यों की बौछार के कारण यह नाटक प्रशस्य एवं चिरस्मरणीय है।

अलङ्कार शास्त्र साहित्य :–

गद्य-सम्राट् पं. अम्बिकादत्त व्यास काव्य-शास्त्रीय सिद्धान्तों के मर्मज्ञ मनीषी थे। उल्लेखनीय है कि इन्होंने देववाणी में अनुष्टुप् लक्षणोद्धार, छन्द-प्रबंध तथा गद्यकाव्य मीमांसा-कारिका नामक पुस्तकों का सृजन किया, किन्तु अत्यन्त खेद का विषय है कि ये कृतियाँ आज हमारे मध्य नहीं हैं। इसी प्रकार हिन्दी भाषा में रचित 'गद्यकाव्य-मीमांसा भाषा' नामक रचना में गद्य के भेदों का निरुपण, गद्य काव्य का स्वरूप तथा उसके भेदोपभेदों का विस्तृत विश्लेषण किया गया है। निःसंदेह गद्यकाव्य की यह शास्त्रीय मीमांसा मौलिक पर्यवेक्षण शक्ति की परिचायिका है।

बहुआयामी साहित्य के धनी :–

स्वनामधन्य एवं बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी पं. व्यास जी का बहुआयामी पक्ष उनके समूचे साहित्य के अंकन एवं समीक्षण, से सिद्ध हो जाता है। देववाणी में विरचित 'कुण्डली-दीपक' एवं 'समस्यापूर्ति सर्वस्व' नामक रचनाएं अन्य लोगों की समस्यापूर्ति एवं कविता-ज्ञान हेतु लिखे गये, किन्तु दुर्भाग्यवश ये दोनों ही रचनाएं अनुपलब्ध हैं।

आपने न केवल साहित्य का बल्कि वैज्ञानिक पक्षों पर भी गहन अध्ययन कर अपनी लेखनी चलाई।

इतिहास, रेखागणित एवं चिकित्सा ज्ञान से सम्बद्ध रचनाएँ आपके बृहद् पाण्डित्य पक्ष को रेखांकित करती हैं। संस्कृत में 'इतिहास-संक्षेप एवं रेखागणित तथा हिन्दी भाषा में 'क्षेत्र-कौशल', चिकित्सा-चमत्कार, रेखागणित भाषा, स्वामी-चरित्र, बिहारी-चरित्र एवं 'विभक्ति विलास' रचनाओं का सूत्रपात किया।' आपके समग्र जीवन से जुड़ी घटनाओं को 'निज-वृत्तान्त' नामक रचना में गुम्फित किया है। व्यास जी न केवल कवि, समीक्षक एवं विज्ञानवेत्ता ही थे बल्कि कुशल अनुवादक, संपादक एवं प्रकाशक भी थे।

उन्होंने अभिज्ञान-शाकुन्तलम्, वेणीसंहार, तर्क-संग्रह एवं सांख्यकारिका जैसी चर्चित रचनाओं का सरल, सुगम एवं बोधगम्य भाषा में अनुवाद भी किया। 'कथा कुसुम कालिका' तथा भाषा ऋजुपाठ भी आपका अनूदित साहित्य है। 'साहित्य नवनीत' रचना का संपादन तथा 'पीयूष-प्रवाह' का प्रकाशन आपके बहु आयामी व्यक्तित्व का अभिन्न अङ्ग है।

संस्कृत भाषा एवं शिक्षण साहित्य :–

संस्कृत भाषा के प्रचार-प्रसार में सतत संलग्न एवं जिनकी रग-रग में देववाणी का निवास हो भला ऐसे आदर्शपुरुष पं. व्यास शिक्षक के रूप में रहते हुए बालकों को संस्कृत के लिए सदैव प्रोत्साहित करते रहते थे। इनका अधिकांश समय बिहार के संस्कृत विद्यालयों में प्रधानाचार्य जैसे पद पर रहते हुए अपनी उल्लेखनीय सेवाएं देने में व्यतीत हुआ।

आपने बिहार में 'संस्कृत समाज' की भी स्थापना की। भला वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बिहार में संस्कृत कॉलेजों में दूध की डेयरियों का धड़ल्ले से संचालन किया जा रहा है। पं. व्यास ने सरल-संस्कृत एवं संस्कृत शिक्षण के लिए उपयोगी पुस्तकें भी लिखीं। यथा– रत्नाष्टक, संस्कृत अभ्यास पुस्तक, बाल-व्याकरण, प्राकृत प्रवेशिका, कथा कुसुमम्, संस्कृत संजीवन आदि। इस प्रकार व्याकरण-शास्त्र पर अपने अप्रतिहत अधिकार का परिचय देते हुए ''गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्'' नामक रचना व्याकरण के प्रौढ़ ज्ञान का परिचय करवाती है। संस्कृत में परिमार्जन एवं शुद्धता के लिए यह कृति अत्यन्त उपादेय एवं पठनीय है।

सरसता प्रधान साहित्य :–

पं. व्यास प्रकृति से सहृदय रसिक कवि थे। उन्होंने अनेक सरसता प्रधान रचनाओं की सर्जना की। हिन्दी भाषा में प्रणीत 'आनन्द मंजरी, रसीली कजरी, धर्म की धूम, पावस पचासा, हो हो होरी, झूलन-झमंक एवं बिहारी-विहार नामक गीतिप्रधान व माधुर्यगुण समन्वित रचनाएं हैं।

इसी प्रकार 'धर्म की धूम' धर्म प्रचारार्थ लिखा गया एक कविता-संग्रह है तथा 'पावस-पचासा' नामक ब्रज भाषा में प्रणीत सर्वोत्तम वर्षा-ऋतु परक कविता-संग्रह है।

उपर्युक्त विवेचनात्मक एवं विश्लेषणात्मक रूप में भारतरत्न पं. अम्बिकादत्त व्यास के व्यक्तित्व एवं कृत्तित्व पर परिचयात्मक रूप में संक्षिप्त सी एक झलक को लेखनी के माध्यम से समेटने का सम्यक् प्रयास किया है। जिस प्रकार सूर्य को दीपक की आवश्यकता नहीं हुआ करती ठीक उसी प्रकार अपनी सशक्त एवं ओजस्विनी रचनाओं से महान् बने साहित्याकाश के देदीप्यमान् भास्कर पं. व्यास जी का यह दिव्य सफर सदैव कीर्तिमान रहेगा। डॉ. श्री कृष्णकुमार जी अग्रवाल ऐसे सर्वप्रथम मनीषी हैं जिन्होंने पं. व्यास के व्यक्तित्व एवं कृत्तित्व पर शोध कार्य किया है।

इन पंक्तियों के लेखक (शंकरलाल शास्त्री) के भी पं. व्यास के व्यक्तित्व एवं कृत्तित्व पर दैनिक पत्रों में नैक आलेख प्रकाशित हुए हैं। राजस्थान संस्कृत अकादमी जयपुर भी ऐसे विश्वविख्यात मनीषी के स्मरणार्थ प्रतिवर्ष सर्वोत्कृष्ट मौलिक गद्य लेखन करने वाले राजस्थान के मनीषियों को राज्य स्तर पर ''पं. अम्बिकादत्त व्यास गद्य पुरस्कार'' से सम्मनित करती है।

आपके व्यक्तित्व एवं कृत्तित्व से प्रभावित हो अवान्तरकालीन कविवृन्द अपने काव्यों को संजोते रहेंगे। निःसंदेह संस्कृत-जगत् को भारत-रत्न पं. व्यास जी की अनुकरणीय देन स्वर्णाक्षरों में वर्ण्य है।

---

1. 'शिवराजविजय का ऐतिहासिक दृष्टि से समीक्षण' नामक विषय पर डॉ. श्यामा भटनागर के निर्देशन में राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से शोध कार्य भी सम्पन्न हुआ है।
2. राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर एवं प्राच्य शोध संस्थान के संयुक्त तत्वावधान में 'पं. अम्बिकादत्त व्यास जयन्ती समारोह का आयोजन द्विदिवसीय रूप में 22 व 23 जनवरी 1990 को राजस्थान विश्वविद्यालय के मानविकी पीठ में आयोजित किया गया था।

पं. श्रीकृष्णराम भट्ट

इस अध्याय में जयपुर के रमणीय स्थलों पर प्रसिद्ध गणगोरी के मेले पर लिखा जयपुरमैलककौतुकम् ऐतिहासिक काव्य जयपुरविलास की रचना की तथा कच्छवंश महाकाव्य के रचयिता जो इतिहासपरक महाकाव्य है साथ ही आयुर्वेद पर भी कई ग्रन्थों की सर्जना की।

'अपरा काशी' गुलाबी नगर जयपुर न केवल अपने स्थापत्य एवं कला के लिए ही प्रसिद्ध है प्रत्युत् विद्वता की श्रेणी में भी अग्रगण्य है। इसी जयपुर नगर के बसने से लेकर सम्पूर्ण वृतान्त को अपनी प्रखर लेखनी से न केवल जयपुर बल्कि समूचे राजस्थान को उपकृत् करने वाले संस्कृत मनीषी पं. श्री कृष्णराम भट्ट को कौन नहीं जानता?

अपने भव्य एवं विलक्षण व्यक्तित्व के कारण संस्कृत समाज को नव दिशा देने वाले विलक्षण प्रतिभा के धनी एवं प्रख्यात कवि श्री कृष्णराम भट्ट का जन्म भट्ट मेवाड़ जाति में उत्पन्न, राजवैद्य श्री कुन्दनराम के ज्येष्ठ पुत्र रूप में श्रीकृष्ण जन्माष्टमी संवत् 1905 को जयपुर में हुआ था। कृष्ण जन्माष्टमी को होने से 'श्रीकृष्ण' के साक्षात् प्रतीक इस लोलालक लाल का नामकरण भी 'कृष्णराम' रखा गया। आपके पिताश्री के दो विवाह होने के कारण आपका जन्म जीवनराम जी भट्ट की प्रथम पत्नी के गर्भ से हुआ।

आप प्रख्यात राजवैद्य एवं आयुर्वेद के चूड़ान्त विद्वान् थे। उल्लेखनीय है कि आपने अपने पितामह श्री लल्लूराम भट्ट तथा पिताजी जीवनराम से आयुर्वेद का गहन अध्ययन किया। 'जयपुर विलास' काव्य के अनुसार श्री जीवनाथ ओझा से काव्य प्रकाश तथा गणित एवं छन्द-शास्त्र का अध्ययन दादूपन्थी श्री चन्दनदास साधु से प्राप्त किया। यथा–

''येनाशिक्षि स जीवनाथगुरुतः काव्यप्रकाशाशय–
श्छन्दश्चन्दनदासतः सगणितं वैद्यागमस्ताततः।
सूते गन्धकजारणावधि कृता येन क्रिया नैकशः
सोऽहं नूतनकाव्यपंचककृतिः श्रीकृष्णशर्मा कविः॥''

कवि के पूर्वजों में चिकित्सा-प्रवीण पं. श्री लक्ष्मीराम भट्ट को जयपुर-प्रखण्ड

महाराज सवाई प्रताप सिंह (1778-1803 ई.) ने उन्हें उनके विलक्षण पाण्डित्य के कारण जयपुर-नगर में आमंत्रित कर बसाया। जैसा कि कवि ने 'जयपुर विलास' में अपना वंश परिचय प्रस्तुत करते हुए लिखा है–

''श्रीमद्-गौतमगोत्रभूषणमणिः प्रत्यर्थिशङ्कामणिः,
वामाचारतमिस्रपुष्करमणी रोगार्तचिन्तामणिः।
पृथ्वीपालकृतादरोऽखिल-बुधश्रेणीशिरः शेखरो।
लल्लूराम-भिषग्वरोऽभ्यवदिह प्रख्यातविश्वम्भरः॥''

(जयपुर विलास 5/72)

अपने पिताश्री के पश्चात् आप संस्कृत कॉलेज में आयुर्वेद के प्रोफेसर पद पर संभवतः 1895 तक आपने अपनी अमिट एवं उल्लेखनीय सेवाएं देकर भारतप्रसिद्ध ख्यातनाम शिष्यों का निर्माण किया यथा प्राणाचार्य स्वामी लक्ष्मीराम जी वैद्य, जिन्होंने आपकी 'सिद्धभैषजमणिमाला' का पाण्डित्यपूर्ण संपादन किया था।

आयुर्वेद के धुरंधर मनीषीवर एवं आपके पितामह पं. श्री लल्लूराम जी वैद्य के आदेशानुसार आपने सर्वप्रथम ''विद्वद्वैद्यतरंगिणी'' नामक ग्रन्थ की सर्जना प्रांजल एवं लालित्यपूर्ण पद्यों में की। जैसा कि कवि ने स्वयं लिखा है–

''सद्यज्ञसंतर्पितसर्वदैवः संभोज्य संतोषितभूमिदेवः।
वाग्यज्ञसंमोहित कालिदासो वैद्यश्चिरं राजति विष्णुरामः॥''

जयपुर को लक्ष्य कर आपने दो प्रकार के काव्यों की रचना की। प्रथम जयपुर की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को उजागर करता काव्य 'जयपुर-विलास' तथा दूसरे प्रकार के काव्य में जयपुर के रमणीय स्थलों एवं प्रसिद्ध 'गणगौरी' आदि मेलों का चित्रांकन कर अपने कुशल कवित्व का परिचय दिया है। इस काव्य का नाम है– 'जयपुर-मेलक-कुतुकम्'।

कवि कि कवित्व प्रतिभा की तत्कालीन कवि एवं राज-समाज में गहरी पैठ थी। कविकृत विभिन्न रचनाओं से सभी कविवृन्द प्रभावित थे तथा उनकी काफी तारीफ किया करते थे। जैसा कि म. म. पं. श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी जी ने उनकी काव्यचातुरी की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए लिखा है–

''उद्यल्लावण्य–लक्ष्मीवलयितवपुषां स्वर्गवाराङ्गनानाम्,
आश्लेषे यः प्रमोदः स्फुरति च गरिमा योऽमृते माधुरीणाम्।
सौरभ्यं कुङ्कुमे यत् पयसि विमलता याऽप्यहो तत्समस्त-
मित्येकत्रेक्षितुं चेदभिलषसि तदा पश्य कृष्णस्य काव्यम्।।''

आपने आयुर्वेद सम्बन्धी विद्वद्वैद्यतरंगिणी, त्रिशती, सिद्धभैषज- मणिमाला एवं पलाण्डुराजशतकम् रचनाएं लिखी हैं। इसी प्रकार 'कच्छवंशकाव्यम्' नामक महाकाव्य, सारशतकम्, मुक्तकमुक्तावली तथा जयपुर विलासम् नामक तीन खण्डकाव्य तथा इसी प्रकार अन्य साहित्यिक रचनाओं में ही जयपुरमेलाकुतुम् आर्यालंकारशतकम्, छन्दोगणितम्, गोपालगीतम्, होलामहोत्सवः, माघवपाणिग्रहोत्सवः, गोविन्दभट्टसंगम एवं काशीनाथस्तवः प्रमुख वर्ण्य रचनाएं हैं।

आयुर्वेद के रससिद्धकवि पं. श्री कृष्णराम भट्ट ने 'बिशती' नामक आयुर्वेदपरक ग्रन्थ को अपूर्ण ही माना है। जैसा कि इसी रचना में कवि ने अपने आश्रयदाता श्री रामसिंह द्वितीय का उल्लेख करते हुए लिखा है–

''अद्य श्री रामसिंहाभिधनरपतिना प्रेरितः कृष्णरामः।
प्रीत्या पश्यन्तु सर्वे शिशुगदितमिति ग्रन्थयुग्मार्थमत्र।।''

कवि का 17 सर्गों में विभक्त 'कच्छवंशमहाकाव्यम्' एक ऐतिहासिक महाकाव्य है, जिसमें आमेर राजवंश से लेकर सवाई रामसिंह और माधोसिंह द्वितीय तक का वर्णन उपनिबद्ध किया है अर्थात् कच्छवंशीय राजाओं के इतिहास लेखन एवं काव्यात्मक शैली में जीवन तथ्य का कवि ने रहस्योद्घाटन किया है। इस रचना में वीर रस अङ्गी रूप में तथा शृंङ्गारादि अङ्गत्व रूप में परिलक्षित होते हैं। इसमें वैदर्भी रीति को कवि ने सर्वोच्च प्राथमिकता दी है। कवि ने घटनावर्णन में तिथियों तक का भी उल्लेख किया है–

'वर्षे चन्द्रार्कशैलेन्द्रे श्रावणे धवले दले।
बभूव ह्यश्वमेधस्य प्रारम्भो नवमीतिथौ।।''

कवि के पदप्रयोग पाण्डित्यपूर्ण, रुचिर, सरस एवं चित्ताकर्षक हैं। कवि ने

''होलोत्सव'' रचना के माध्यम से विभिन्न प्रकार के द्रष्टान्तों को उपस्थापित किया है। द्रष्टव्य है होलोत्सव भाण का एक उदाहरण–

''ब्राह्मणत्वेन विख्याता जातिरस्माकमेधने.............. पुरा मेवाड़भूमीन्द्रस्वदेशोन्नतिकाम्यया..........एकलिंगास्पदं भट्टमेवाड़ाग्रेसरो द्विजः..............इष्टप्रसादान्मेवाड़ो नागदो द्विजसत्तमः........ तदारम्य स्थिता भट्ट मेवाड़ा नागदा वयं .... श्रीलिंगेन समाज्ञप्ता गुर्जरे स्थितिमादधुः।।''

इसी प्रकार 'जयपुर-विलासम्' नामक रचना में तत्कालीन सामन्तों, प्रमुख दर्शनीय स्थलों एवं अपरा काशी के चूड़ान्त मनीषियों, कलाविदों तथा बसावट आदि का वैलक्षण्यपूर्ण वर्णन किया गया है। मननीय है जयपुर की प्रशंसापरक परम्परा का एक पद्य–

''जयपुरं जयसिंहविनिर्मितं विविधराग-परागमनोरमम्।
अतिथिसत्कृति-सत्कृति-शोभितम् नववधूनवधूपित-मन्दिरम्।।''

कविप्रवर श्रीकृष्णराम भट्ट द्वारा आयुर्वेद पर आधारित ''पलाण्डुराज -शतकम्'' ग्रन्थ की रचना 1949 विक्रमाब्द् में फाल्गुन शुक्ला द्वितीया तिथि को लिखी गई। कवि आयुर्वेद के ज्ञाता थे। अतः उन्हें रसायनशास्त्र की दृष्टि 'प्याज' की महत्ता को मध्य नजर रखते हुए 'पलाण्डुराजशतकम्' ग्रन्थ ग्रथित किया। कवि ने प्याज को वनस्पति-जगत् के राज-सिंहासन पर समासीन कर इस अद्भुत लालित्यमयी शैली में प्रणीत इस रचना का प्रकाशन निर्णयसागर प्रेस मुम्बई से करवाया। ग्रन्थ रचना के सन्दर्भ में कवि लिखता है–

''नवाब्धि-नवचन्द्राब्दे फाल्गुनस्य सिते दले।
पलाण्डुशतकं पूर्णं सपत्नशतकम्पनम्।।''

वैद्यकुलगुरु श्रीकृष्णराम भट्ट की अनुपम कृति 'पलाण्डुराजशतकम्' में पलाण्डु (प्याज) को सभी वनस्पतियों एवं औषधियों रूपी सेना का नायक सिद्ध करते हुए 'लशुन' को सेनानायक माना है। कवि ने देश-विदेशों में सम्राट् एवं प्रजा का सम्बन्ध प्याज एवं वनस्पतियों को मानते हुए इस काव्य की रचना की है।

ऐसे ठोस एवं साक्ष्य प्रमाण मिलते हैं कि स्वयं श्री कृष्णराम जी भट्ट पाण्डुरोग से ग्रसित हो गये थे। अतः अपने रोग के शमनार्थ आदित्यनाथ को प्रसन्न करने के लिए इस शतक की रचना की। इस शतक के प्रभाव एवं सूर्य देव की असीम अनुकम्पा से कवि को पाण्डुरोग से मुक्ति मिली।

इस रचना में राम-रावण युद्ध की तरह ही पलाण्डुराज और जीवों में बड़ा संहार होता है। वर्ण्य विषय यह है कि कवि का 'पलाण्डुराज शतकम्' नामक काव्य उद्देश्य विशेष को लक्ष्य कर लिखा गया महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। ऐसी जनश्रुति है कि कवि कृष्णरामभट्ट स्वयं ही पाण्डुरोग से ग्रस्त हो गये थे। अतः ऐसी दुःखद वेला में कवि के गुरु आदित्यनाथ ने कवि को पलाण्डुसेवन की प्रेरणा दी। इस काव्य में कवि ने पलाण्डु स्वरूप एवं गुणों को सम्यकतया वर्णित किया है। इस रचना में कवि ने पलाण्डुनामक कन्द (प्याज) को नृपरूप में, लहसुन को सेनानी रूप में तथा अन्य कन्द विशेष को सैनिक रूप में प्रस्तुत किया है। प्याज रस सेवन से पाण्डुरोग (पीलिया) नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार विभिन्न प्रकार की पीड़ाओं से घिरे यवन प्रजाजनों को संबोधित करते हुए कवि कहता है–

''तया परास्ता यवना परास्ता रुजो दधाना युधि-हीयमानाः।
तं शाकसाम्राज्यपदप्रतिष्ठं गुणैर्गरिष्ठं शरणं समीयुः।।
असौ रसोऽनेन निवेदितेभ्यस्तेभ्यः स्व-सेवावसरं शशंस।
क्षुद्रानपि स्वीयपदं प्रपन्नाम् सन्तः प्रतिष्ठां प्रति लम्भयन्ति।।''

उल्लेखनीय है कि पलाण्डुराज राज के दिग्विजय वर्णन में यह स्पष्ट किया गया है कि पलाण्डुकन्द (प्याज) के सेवन से तथा लहसुन के प्रयोग से 'विषूचिका' नामक रोग से शीघ्र मुक्ति संभव है। प्याज के साहचर्य से ही शाकादि स्वादिष्ट, मनमोहक तथा स्वादमयी हो जाते हैं।

कवि ने पलाण्डुराज के ऊपर पाटलवर्ण, शंख की तरह की आकृति अर्थात् प्याज की बनावट का वर्णन करते हुए कहता है–

''श्मश्रूणि पाटल-महांसि विरञ्चिरस्मै,
शम्भुर्जटा - मरकताङ्कुर - सन्निभाभा।

शङ्खञ्च चक्रमपि हन्नु मुरारिरूर्ध्वं,

तिर्यग् विभक्तवपुषे विततार तुष्टः॥''

कवि की इस सर्जना में अर्थ रूपी वैदुष्य एवं शब्द माधुरी बलात् सहृदयों के चित्त को हर लेती है–

''वशे विधास्यन्ति हठेन सुन्दरीः,

सतां करिष्यन्ति विशिष्य चादरम्।

पास्यन्ति नस्तानि बलानि सागरं,

विहाय वर्णं दशमं पुनः पठ॥''

उपर्युक्त पद्य में यदि 10 वाँ वर्ण छोड़कर पढ़ा जाए तो इसका अर्थ एकदम भिन्न होगा। 10 वें वर्ण के लोप से यह पद्य इस प्रकार लिखा जाएगा–

''वशे विधास्यन्ति हठेन दरीः,

सतां करिष्यन्ति विशिष्य दरम्।

पास्यन्ति नस्तानि बलानि गरम्,

विहाय वर्णं दशमं पुनः पठ॥''

कवि ने इस रचना में मुख्य रूप से वीररस का तथा अङ्गरूप में शृंङ्गार, वीभत्स एवं रौद्रादि रसों का यथास्थान प्रयोग किया है। युद्ध प्रसंग का एक उदाहरण वीर रस का अद्वितीय उदाहरण है। यथा–

''समे हि धीरोऽसि किमीक्षसे तव प्राण-प्रतिष्ठार्थमुपागता वयम्।

इत्थं तमुक्त्वा वृषभं रसोनको विव्याध बाढं पविसोदरैः शरैः।

हृदि प्रणुन्नः स रसोनकेन शृङ्गप्रहारी वृषभेऽप्यमर्षणः।

मुमुञ्च नादं भुवनप्रकम्पिनं समाललम्बे निजशक्तिमुज्ज्वलाम्॥

इस प्रकार कहा जा सकता है कि इसमें न केवल कवि ने अपनी विलक्षणपाटवता का ही परिचय दिया है बल्कि समाज को आयुर्वेद का अनुपम ज्ञान एवं वनस्पति की विशेष महत्ता का प्रशस्य चित्रांकन किया है। इसमें शब्दसौष्ठव, यथास्थान अलङ्कारों एवं रसों का प्रयोग कर रघुदिग्विजय की तर्ज पर कवि ने पलाण्डुराज दिग्विजय की रचना की है।

'जयपुर-विलास' में प्राचीन पण्डित-प्रवरों के लिए चूरमा, बाटी व दाल का जिक्र कवि ने देववाणी छन्द में उपनिबद्ध कर क्रमशः संस्कृत, ढूंढारी, गुजराती एवं बृजभाषा में करते हुए लिखा है–

''हंहो एषा स्फुरन्ती सघनघनघटा लोलविद्युद्विलासैः,
काली पीली झुकी छै झट पट निमटो चूरमो भीज जासी।।
ना केता भांग पीधी हरकति पड़सै कैम गांड़ा थया छौ,
भैया जानो तुम्हारी तुम अब हम तो जीमवे को जमैं है।।''

उक्त प्रसंग पर भारती पत्रिका के प्रधान संपादक राष्ट्रपति संमानित विद्वान् श्रद्धेयवर देवर्षि कलानाथ शास्त्रीजी ने अपने ग्रन्थ 'जयपुर की संस्कृत परम्परा' में सविस्तार उल्लेख किया है। मनमौजी प्रकृति वाले मूर्धन्य मनीषी एवं वैद्यराज का निधन 49 वर्ष की अल्पायु अर्थात् वैशाख कृष्ण प्रतिपदा संवत् 1954 को हुआ था। आपके सुपुत्र पं. श्री गंगाधर भट्ट ने भी संस्कृत कॉलेज में प्राध्यापक पद पर कार्य करते हुए देववाणी की काफी सेवा की। गौरतलब है कि इनके प्रपौत्र पं.देवेन्द्र कुमार भट्ट कवि-नायक के ग्रन्थों का संपादन व प्रकाशन का सरास्वत कार्य किया है। खेद का विषय यह है कि आपके निधन से संस्कृत-जगत् को जो अपूरणीय क्षति हुई उसे शब्दों की मणिमाला में गुम्फित करना, सूर्य को दीपक दिखाने जैसा ही है।

---

1. राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से स्व. डॉ. गंगाधर भट्ट के निर्देशन में ''श्रीकृष्णराम भट्ट की संस्कृत साहित्य की देन'' नामक विषय पर सन् 1979 में डॉ. लक्ष्मी शर्मा ने शोध कार्य किया है।

महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी

इस अध्याय में पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने जयपुर इतिहास और नीतिपरक कई ग्रन्थों में सर्जना की, चतुर्वेदी जी को भारत सरकार ने १९५८ में पुरस्कृत किया। इनके समग्र व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर आधारित चतुर्वेदसंस्कृतरचनावली संदर्भ ग्रन्थ वाराणसी से १९६६ में प्रकाशित हो चुका है।

संस्कृत साहित्याकाश में जयपुर नगरी द्वितीय काशी नाम से सुविख्यात है। इसी सुसौम्या गुलाबी नगरी में नानाशास्त्रविचक्षण, प्रखर प्रतिभा के धनी अनेक मूर्धन्य विद्वान हुए। यह निःसंदेह सत्य है कि संस्कृत वाङ्मय में ऐसी अनेक सूक्तियाँ हैं जिनका विश्लेषण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं सामयिक होता है।

जैसा कि पण्डित विष्णु शर्मा ने लिखा है–

गुणिगणगणनारम्भे न पतति कठिनी रससंप्रमादयस्य।
देनाम्या यदि सुतिनी वद, वन्ध्या कीदृशीनाम्।।

अर्थात् यदि हम पण्डितों की गणना करना चाहें और उनमें हमें बहुत देर तक किसी व्यक्ति के नाम का स्मरण करना पड़े और उसमें भी विवाद हो तो क्या समालोचक उसे भी विद्वान मानेंगे?

संस्कृत साहित्य के जाज्वल्यमान मार्त्तण्ड, अप्रतिमविद्वान् तलस्पर्शिनी मेधा के धनी आश्वलायनीशाखी ऋग्वेदाध्यायी महामहोपाध्याय पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी को कौन नहीं जानता?

आपके व्यक्तित्त्व एवं कृतित्व पर संस्कृत साहित्य के मूर्धन्य मनीषी, डॉ. प्रभाकर शास्त्री के निर्देशन में डॉ. कैलाश चन्द्र त्रिपाठी ने राजस्थान विश्वविद्यालय से १९७८ में पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की है।

इस शोध प्रबन्ध ग्रन्थ के आधार पर एवं इनके विषय में पूर्ण जाँच-पड़ताल करके एवं गहन अध्ययन के तदुपरान्त मैं इस सीमा तक पहुँच सका। महामहोपाध्याय चतुर्वेदीजी ने अपनी ''आत्मकथा और संस्मरण'' नामक रचना में अपना पूर्ण वंश परिचय इस प्रकार प्रस्तुत किया है– आपके पूर्वज जयपुर नगर के संस्थापक महाराजाधिराज सवाई जयसिंह

द्वितीय, के द्वितीय पुत्र सवाई माधवसिंह प्रथम के शासनकाल में जयपुर आये तथा राष्ट्र भाषा 'हिन्दी' के 'कवीश्वर' पद पर प्रतिष्ठित रहे।

जैसा कि चतुर्वेदीजी के शब्दों में यहाँ उद्धृत किया जा रहा है– 'मेरे पूर्वज अनेक पीढ़ियों से जयपुर– राज्य में हिन्दी भाषा के 'कवीश्वर' पद पर प्रतिष्ठित थे। कहा जाता है जयपुर-राज्य के पूर्व महाराजा श्री माधवसिंह जी, जो कि उदयपुर के महाराजा श्री अमरसिंह के दौहित्र थे और बहुत काल तक उदयपुर (परन्तु यहाँ डॉ. कैलाशचन्द्र त्रिपाठी का मानना है कि उदयपुर के स्थान पर जयपुर होना चाहिए क्योंकि श्री अमरसिंह उदयपुर के राजा थे और उनके दौहित्र के लिए जयपुर का उत्तराधिकार का निश्चय होने पर ही महाराणा ने अपनी सुता चन्द्रकुँवरी के साथ महाराज जयसिंह का विवाह करना अङ्गीकार किया था। बिड़ला कॉलेज पत्रिका पिलानी में प्रकाशित १९८९–९० वसन्त विशेषाङ्क 'महाराजा सवाई जयसिंह' शीर्षक से लिखित श्री गौरीशंकर ओझा के लेखानुसार) का राज्य सिंहासन प्राप्त न कर सके थे– ये जब महाराज पद प्राप्त कर जयपुर पधारे तब उनके साथ ही मेरे पूर्वज भी मथुरा से आए थे। प्रायः ऐसा प्रतीत होता है कि अपनी प्रतिष्ठा बचाने के लिए बहुत से माथुर चतुर्वेदियों ने मेवाड़ राज्य की शरण ली थी, उनमें ही ये भी रहे होंगे। ये ज्योतिष के भी विज्ञाता थे और उनके आधार पर ही उन्होंने श्री माधवसिंह जी से कहा था कि ''आप जयपुर राज्य के अधिपति अवश्य बनेंगे।'' तब उन्होंने वचन दिया था कि यदि मैं जयपुर का अधिपति बनूँगा तो तुम्हें भी अपने राज्य जयपुर अवश्य ले चलूँगा। उसी वचन के अनुसार वे उन दोनों भ्राताओं को, जिनका नाम श्री ब्रजलाल जी और रामलालजी था अपने साथ जयपुर लाये थे। यहाँ लाकर उन्हें ससम्मान पूर्वक राजकवीश्वरों में उन्हें प्रतिष्ठित स्थान दिया।

तप, मन्त्रानुष्ठान, और भगवद् भक्ति तीनों मिलकर मानों इस पृथ्वी मण्डल पर अवतीर्ण हुए हों। प्रामाणिक तथ्यों एवं समीक्ष्य आधार पर इनका जन्म १९३८ की पौष शुक्ल पक्ष की दशमी पुण्यतिथि को सान्ध्य-वेला में हुआ।

श्री चतुर्वेदी जी ने 'आत्मकथा और संस्करण' नामक ग्रन्थ में उन्होंने अपनी

बाल्यावस्था का वर्णन वैदुष्य पूर्ण ढंग से किया है, उन्होंने यह वर्णित किया है कि उनके जन्म से पहले सात भाइयों ने तथा जन्म के पश्चात् दो भाइयों ने जन्म लिया परन्तु अहो दुर्दैव ! ये सब कालग्रास हो गये।

जिस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने वसुदेव और देवकी के जन्म लिया उसी प्रकार म.म. चतुर्वेदीजी सुदैवतः आठवीं सन्तान के रूप में प्रादुर्भूत हुए। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। जैसा कि उन्होंने ''आत्मकथा और संस्मरण'' में लिखा है– ''मेरा भी बाल्यकाल अधिकतर गाँव में ही बीता। यहीं पर श्री पिताजी ने लिखने-पढ़ने का और गणित के पहाड़ों का भी अभ्यास करवा दिया था''।

आपने प्रवेशिका परीक्षा चहुँमुखी प्रतिभा के धनी, ज्ञान और श्रम, कठोरता एवं मृदुता, स्फूर्ति एवं धीरता के अपूर्व संगम : श्री मदनलालजी गौड़, श्री जानकीलालजी आदि की छत्र-छाया में विक्रम संवत १९५२ में संस्कृत विद्या मंदिर में सर्वाधिक अङ्कों से उत्तीर्ण की। उपाध्याय परीक्षा आपने अथक परिश्रम से व्याकरण विषय में १९५५ में प्रथम स्थान से उत्तीर्ण की। जिस समय आपकी शास्त्री परीक्षा (१९५८) में होनी थी, उसी समय परीक्षा से ठीक दो माह पूर्व सपरिवार जगन्नाथपुरी आदि धामों की यात्रा की जिसमें आपको पं. गंगाधर शास्त्री, पण्डित दामोदर शास्त्री, पं. श्री शिवकुमार शास्त्री जैसे उद्‌भट विद्वानों के दर्शन का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। तथापि आपने ये परीक्षा सर्वश्रेष्ठ अङ्कों से उत्तीर्ण की। आचार्य परीक्षा के समय आपका सम्पर्क समीक्षाचक्रवर्ती, महामहोपदेशक विद्यावाचस्पति, वैदिक-विज्ञान के अद्‌भुत युगपुरुष पण्डित मधुसूदन ओझा से हुआ और उनके सानिध्य में रहकर विभिन्न विषयों के अध्ययन का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपने व्याकरणाचार्य परीक्षा महाराजा संस्कृत कॉलेज से वि. सं. १९६० में उत्तीर्ण की। इसके तत्पश्चात् चतुर्वेदीजी पंजाब विश्वविद्यालय की सर्वोच्च ''शास्त्री'' परीक्षा में प्रविष्ट हुए। इसके अध्ययन हेतु पं. वेदविज्ञ पं. मधुसूदन जी ओझा से न्यायशास्त्र का तथा एक बंगाली विद्वान् द्वारा जो 'पढ़ो' बाबू के नाम से सुविख्यात था आपने आँग्ल भाषा का अध्ययन कर १९६३ में न्यायशास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की। इस परीक्षा में आप पंजाब विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम रहे। मानो यही परीक्षा आपके जीवन की अन्तिम कसौटी थी।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आपने शिक्षा क्षेत्र में 'उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः, तथा 'उत्साहवतां शत्रवोऽपि वशीभवन्ति' जैसे पीयूष वचनों को सार्थक सिद्ध किया। ''आत्मकथा और संस्मरण'' नामक ग्रन्थ में विद्यावाचस्पति पं. मधूसूदन ओझा जी का वर्णन म.म. चतुर्वेदीजी ने अपने शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया है–

''विद्यावाचस्पति श्री मधुसूदनजी ओझा कुछ समय के लिए संस्कृत कॉलेज में भी अध्यापक पद पर पधारे थे और कुछ काल वे अंग्रेजी विद्यालय में भी संस्कृताध्यापन कराते रहे। किन्तु कुछ काल के अनन्तर जब जयपुर महाराज से उनका विशेष सम्पर्क हो गया तो उन्होंने उनका अध्यापन क्रम छुड़वाकर उन्हें अपने पैलेश लायब्रेरी का अध्यक्ष नियुक्त कर दिया। अस्तु, इसके अनन्तर भी वे समय-समय पर संस्कृत कॉलेज में आते रहे और उनके अद्भुत विषयों को सुनकर मेरी (चतुर्वेदीजी की) उन पर (मधुसूदनजी ओझा पर) श्रद्धा बढ़ती रही। अन्ततः मेरे मित्र पं. मदनलालजी प्रश्नवर के अनुरोध पर उन्होंने हमें पढ़ाना स्वीकार कर लिया। इस हेतु पहले पं. मदन लालजी के साथ मैं भी उनके स्थान पर जाने लगा। उनके स्वर्गवास के दो-तीन दिन पूर्व तक भी कुछ न कुछ उनसे शिक्षा लेता ही रहा। जब कभी अन्य प्रान्तों में, मैं अध्ययनार्थ जाता और अवकाशादि के दिनों मैं जयपुर आता तो उन दिनों उनके यहाँ जाकर कुछ न कुछ शिक्षा लेता ही रहता था। अस्तु, श्री जीवनाथ जी (अपने दीक्षा और विद्या दोनों के गुरु), श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री जी और श्री मधुसूदन जी ओझा ये तीनों ही मेरे प्रधान गुरु रहे।''

इनका आज भी मैं प्रातःकाल स्मरण कर लेता हूँ और आज भी इन तीनों में मेरी अतुल श्रद्धा है।'' अतः गुरु के प्रति ऐसी अटूट श्रद्धा निश्चय ही अनुकरणीय एवं मननीय है।

आपके अध्ययनकाल में जो महत्त्वपूर्ण व उल्लेखनीय कार्य हैं उनमें 'संस्कृत रत्नाकर' संस्कृत-पत्रिका प्रकाशन का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'संस्कृत-रत्नाकर' नामक मासिक पत्रिका का प्रारम्भ सम्वत् १९६१ में हुआ। इस पत्रिका में पण्डित सूर्यनारायणजी शास्त्री (मानव वंशमहाकाव्यकार), तैलंग भट्ट श्री मथुरानाथ जी शास्त्री (आशुकवि) एवं म.म. चतुर्वेदी जी का सहयोग प्रमुख था।

अतः संस्कृत साहित्यार्णव में ''संस्कृत-रत्नाकर'' में ओजस्विनी लेखनी एवं वैविध्यपूर्ण लेखों से आपने अपना प्रतिष्ठित स्थान बना लिया इससे देश के निखिल सुधीजन आपका ससम्मान आदर करने लगे।

मूलरूप से अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन की स्थापना का श्रेय भी आप ही को है। प्रधानतया इस क्षेत्र में भी भट्ट मथुरानाथजी शास्त्री का सहयोग स्मरणीय है।

विशेष रूप से म.म. चतुर्वेदीजी विभिन्न सभाओं व अधिवेशनों में भाग लेते थे। सन् १९४४ में शीतकाल में काशी में ओरियण्टल कान्फ्रेंस का आयोजन हिन्दू विश्वविद्यालय में किया गया। उस आयोजन के पण्डित परिषद् के सभापति के रूप में म.म. जी का निर्वाचन हुआ। सर मिर्जा इस्माइल ने १९४५ ई. में एक साथ ७ पण्डितों को कॉलेज सेवा से मुक्त किया। जिनमें सभी से चतुर्वेदी जी की मैत्री थी। उनके नाम इस प्रकार हैं– चन्द्रदत्तजी मैथिल, कन्हैयालालजी नैयायिक, मदनलालजी प्रश्नवर, भट्ट मथुरानाथ जी शास्त्री, श्री गिरिजाप्रसादजी द्विवेदी और स्वयं महामहोपाध्याय जी।

संस्कृतोपयोगिनी सभा का आयोजन–

म.म. चतुर्वेदीजी एवं उनके मित्रवृन्द अपनी छात्रावस्था में ही एक सभा की स्थापना की। जहाँ सभी मित्र-मण्डली के सुधीजन जयपुर के रामनिवास बाग में एकत्रित होकर देववाणी संस्कृत भाषा में निबन्ध, कविता, कथा एवं काव्य पाठादि किया करते थे। परिणामतः उन्हें सूरीजनों की सभाओं एवं अधिवेशनों में भाषण देने का (वक्तृत्व कौशल) का सौभाग्य प्राप्त हुआ। विद्याभासुरभूसुर, विद्वत्पुण्डरीक एवं उनके परमश्रद्धेय गुरुवर श्री लक्ष्मीनाथजी शास्त्री ने आपके अध्ययन समय में ही सप्ताह में एक दिन शास्त्रार्थ सभा का आयोजन किया करते थे। 'आत्म-कथा' में चतुर्वेदी जी ने लिखा है कि हिन्दी के सुप्रसिद्ध एवं मूर्धन्य लेखक श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने शास्त्रार्थ सभा में दिये गये भाषण पर व्याकरण एवं साहित्यादि ग्रन्थों का अध्ययन करने वालों पर कटाक्ष लिखा था, सत्त्वर ही इसका उत्तर चतुर्वेदीजी ने ही लिखकर भेजा था। अतः यह कहा जा सकता है कि आपको अपने अध्ययनकाल में ही वक्तृता, लेखन व

शास्त्रार्थों का अच्छा अभ्यास हो गया था। आपका कार्य क्षेत्र न केवल द्वितीय काशी जयपुर नगरी ही रही अपितु आप समस्त भारतवर्ष में अपने वैविध्य से सुविख्यात थे। आप संस्कृत–रत्नाकर और 'ब्रह्मचारी' जैसी महत्त्वपूर्ण मासिक पत्रिकाओं के संपादक रहे। भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन के सुदीर्घावधि तक प्रमुख अधिकारी, हरिद्वारस्थ ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम के प्रधान आचार्य, सनातन धर्म संस्कृत कॉलेज लाहौर के अध्यक्ष तथा हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी की शासन समिति एवं संस्कृत शिक्षा समिति के आप मानद् सदस्य भी रहे। आपको पाणिग्रहण संस्कार जैसे पावन बन्धन में भी दो बार बँधना पड़ा। प्रथम पत्नी विद्यादेवी थी। आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण करने के तदुपरान्त 'संस्कृत पत्रिका' के प्रकाशन का कार्य आपने प्रारम्भ किया तब तक आपके तीन कन्या जन्म ले चुकी थीं।

आर्थिक पक्ष को प्रबल एवं जीवन-निर्वाहार्थ आप ५०रु. मासिक वृत्ति पर दिगम्बर जैन महाविद्यालय, सहारनपुर के प्रधानाध्यापक नियुक्त हुए। परन्तु प्लेग जैसी बीमारी से आपकी कान्ता दिवंगत हो गई। अतः आपको शोक-सागर में डूबना पड़ा। आपके तातश्री के भूयोभूयः आग्रह से आपने द्वितीय विवाह रामगढ़ से गुलाबी देवी के साथ किया।

आप शिक्षा जगत् में सहारनपुर, ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम हरिद्वार, सनातन धर्म कॉलेज, लाहौर जैसी शिक्षण संस्थाओं में अनुपम सेवाएँ देने के तत्पश्चात् आप १९२४ में अपनी जन्मस्थली अर्थात् जयपुर नगरी में आ गये। तत्कालीन शिक्षा निदेशक श्री श्यामसुन्दर जी शर्मा के विशेष आग्रह पर आपने जयपुर संस्कृत कॉलेज के अध्यक्ष पद को अङ्गीकार किया। आपने २० वर्ष तक इस कॉलेज में अपनी अमिट सेवाएँ प्रदान कीं। आपके प्रयास से ही कॉलेज में आयुर्वेद जैसी उपयोगी विषय की शिक्षा दी जाने लगी। चतुर्वेदीजी ने स्कूल विभाग और कॉलेज विभाग को पृथक् कर कॉलेज विभाग के प्राध्यापकों को अधिक सुविधाएँ प्रदान कीं। यहाँ पर आँग्लभाषा के अध्यापक का भी आपने प्रबन्ध करवाया। जयपुर संस्कृत कॉलेज भारत का सर्वप्रथम संस्थान था, जहाँ चारों वेदों का अध्यापन होता था, इस विद्यालय में वेद के सर्वप्रथम अध्यापक का श्रेय

भी आपको ही दिया जा सकता है। संस्कृत कॉलेज की परीक्षाओं को वाराणसी संस्कृत कॉलेज तथा पंजाब विश्वविद्यालय से मान्यता प्राप्त करवाने का श्रेय भी आपको ही है। आपने अपने अथक् प्रयास से अखिल भारतीय आयुर्वेद सम्मेलन के विशाल अधिवेशन का आयोजन किया। महाराजा कॉलेज, जयपुर से अवकाश ग्रहण करने के तदुपरान्त आप महाराज अलवर के साग्रह पर राजकीय संस्कृत महाविद्यालय अलवर के प्राचार्य पद पर १९४६ से १९४८ तक समारूढ़ रहे। चतुर्वेदी जी अलवर महाराज के राजपुरोहित भी रहे।

आपने वर्ष में कुछ माह तक मूलचन्द खैरातीराम सनातनधर्म संस्कृतपीठ नामक संस्था, लाहौर के संचालकत्व का भार भी वहन किया। यहाँ आप १९४४ से ४७ तक संचालक रहे। आप हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में संस्कृतानुसंधान विभाग के चार वर्ष तक अध्यक्ष रहे। आप हिन्दू विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह पर प्राच्य विद्या समिति में सम्मिलित होने के लिए वाराणसी गए। यहाँ पर सर्वसम्मति से यह निर्णय लिया गया कि संस्कृत पण्डितों को डी. लिट् के स्थान पर वाचस्पति की उपाधि से सम्मानित किया जाये और उसमें सर्वप्रथम नाम चतुर्वेदीजी का ही था। आपको इस शिक्षा जगत् की सर्वोच्च उपाधि से विभूषित किया गया।

''वैदिक विज्ञान और भारतीय-संस्कृति'' शीर्षक से आपने एक पुस्तक लिखी। इस ग्रन्थ पर आपको उत्तर प्रदेश एवं राजस्थान सरकार द्वारा पारितोषिक भी प्राप्त हुआ। भारत सरकार ने सन् १९५८ में जिन चार राष्ट्रीय विद्वानों को सम्मानित किया तथा जिन्हें १५०० रु. मासिक आर्थिक सहायता देने की घोषणा की, उसमें आपका नाम सर्वोपरि था। भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन ने आपको साहित्य अकादमी के पाँच हजार के पुरस्कार से सम्मानित किया। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आपको अपने वैदुष्य से सर्वोच्च उपाधि और सर्वोच्च सम्मान प्राप्त हुए।

आपने सैकड़ों सुयोग्य शिष्यों का निर्माण किया। जिनमें कुछ विद्वानों के नाम इस प्रकार हैं– पं. श्री मोतीलाल शास्त्री, श्री भवदत ओझा एवं पं. श्री दुर्गादत्त जी ओझा, पं. मोहनदेव शर्मा शास्त्री, श्री युगल किशोर शर्मा चतुर्वेदी, श्री गुलाबचन्द्र जी चतुर्वेदी,

पं. श्री लक्ष्मीनारायण शर्मा, पं. वृद्धिचन्द्र शर्मा शास्त्री (व्याकरण-धर्मशास्त्राचार्य), पं. जगदीश शर्मा साहित्याचार्य, पं. श्री नन्दकिशोर जी वैद्य (आयुर्वेद विभाग राजस्थान के प्रथम निदेशक व आयुर्वेद कॉलेज के भूतपूर्व प्राचार्य)।

कृतित्वः—

आपने विभिन्न ग्रन्थों एवं लेखों की सर्जना की है।

विद्यावाचस्पति पं. मधुसूदन ओझा विरचित 'महर्षि कुलवैभवम्' का संपादन। (प्रकाशित ग्रन्थ) 'पुराण पारिजात' 'वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति' पुरस्कृत कृति 'वेद विज्ञान बिन्दु' (प्रकाशित ग्रन्थ) आपकी विभिन्न रचनाओं का संकलन कर आपके कनिष्ठ पुत्र पं. श्री शिवदत्तजी चतुर्वेदी ने ''चतुर्वेद संस्कृत रचनावली'' नाम से चौखम्भा संस्कृत सीरीज वाराणसी से सन् १९६६ में प्रकाशित करवाई है।

आपकी दो कहानियाँ सुप्रसिद्ध हैं– पितुरुपदेशः तथा कश्चित्कविः। 'कश्चित कविः' कथा में कथाकार ने किसी निर्धन किन्तु आत्म-सम्मान की भावना से ओत-प्रोत एक कवि का इतिवृत्त है। 'पितुरुपदेशः' नामक कथा पाँच खण्डों में विभक्त है। इस कथा में कुछ धूर्त लोग किसी अध्ययनशील मेधावी छात्र की शिकायत उसके पिता के पास कर देते हैं जो वस्तुतः मिथ्या सिद्ध होती है। अतः जिस विद्वान का एक-एक श्वास संस्कृत वाङ्मय के लिये समर्पित हो और वेद-मंत्रों की ध्वनि से गुंजायमान हो, ऐसे महामानव निश्चय ही अभिनन्दनीय हैं।

इस प्रकार शिव एवं शक्ति के समुपासक महामहोपाध्याय जी संस्कृति, संस्कृत, हिन्दी और सनातन धर्म के विविध क्षेत्रों की अनुपम सेवा करते हुए १० जून, १९६६ को वाराणसी में ब्रह्मलीन हो गये।

कवि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर ''सौरभ'' कार्यक्रम में जयपुर आकाशवाणी केन्द्र से सोदाहरण वार्ता दिनांक १९-२-९८ को प्रातः ८.५० पर प्रसारित हुई। यह वार्ता श्री शंकरलाल शास्त्री के शब्दों में इस प्रकार थी–

संस्कृत साहित्याकाश में जयपुर नगर ''द्वितीय काशी'' नाम से सुविख्यात है। तप, मन्त्रानुष्ठान और भगवद् भक्ति तीनों मिलकर मानो इस पृथ्वी मण्डल पर अवतीर्ण

हुए हों। इस प्रकार तीनों तत्त्वों के साकार रूप में, नाना शास्त्रविचक्षण, पण्डितप्रवर, संस्कृत जगत् के जाज्वल्यमान नक्षत्र, तलस्पर्शिनी मेधा के धनी, वाग्मितावाचस्पति महामहोपाध्याय का जन्म विक्रम संवत १९३८ की पौष शुक्ला दशमी पुण्यतिथि को आश्व लायनीशाखी, ऋग्वेदाध्यायी, वैदुष्यैकपक्षपाती पं. गोकुलचन्द्र जी चतुर्वेदी के पावन आँगन जयपुर में हुआ। उनके व्यक्तित्व का वर्णन उनके द्वारा विरचित 'आत्मकथा और संस्मरण' में वर्णित है। महाराज संस्कृत कॉलेज, जयपुर के सुप्रसिद्ध वैयाकरणज्ञ पं. श्री लक्ष्मीनाथ जी शास्त्री के निर्देशन में उनकी शिक्षा-दीक्षा पूर्ण हुई। उनका सरल, सौम्य, विचक्षण और भव्य व्यक्तित्व वस्तुतः भारतीय संस्कृति का प्रतीक ही था। वस्तुतः इनके जन्म से राजस्थान की धरा गौरवान्वित रही है। म.म. जी के विद्याभ्यास व विशिष्ट योग्यता सम्पादन करने में जिन विद्वानों का योगदान रहा है उनका परिचय 'संस्कृत रत्नाकर' नामक पत्रिका में इस प्रकार वर्णित किया है।

यस्याः स्थूलशरीरकृच्छ्रतिरतः श्रीजानकीलालवि,
लक्ष्मीनाथबुधश्च सूक्ष्मवपुषः सम्पादकः सम्मतिः।
हेतुः कारणविग्रहस्य च सुधीः श्री जीवनाथौगुरू,
जींवः श्रीमधुसूदनो विजयते मातेव विद्याऽस्य सा।।

पत्रकारिता के क्षेत्र में चतुर्दिक् दृष्टि दौड़ाने पर परिज्ञात हुआ कि 'संस्कृत-रत्नाकर' जैसा बहुआयामी विवेचन म.म. चतुर्वेदीजी ने किया है वैसा संस्कृत के ललित उत्सङ्ग में लालित होने वाले इस धरती के किसी लाल ने नहीं किया है। कालान्तर में यही पत्र ''अ.भा. संस्कृत साहित्य सम्मेलन'' के मुख पत्र के रूप में सुविकसित एवं चिर-चर्चित हुआ। निश्चय ही चतुर्वेदी जी अपने मुखारविन्द से निर्लोभ होकर अपना ज्ञानामृत बाँटते हुए जीवन के मधुमय रस में सबको डुबोया। विभिन्न साहित्यिक संस्थाओं ने उन्हें ''वाग्मितावाचस्पति, साहित्यवाचस्पति की उपाधियाँ प्रदान कीं। निश्चय ही वे सरस्वती के वरद पुत्र थे।

'कृतिर्यस्य स जीवति' अर्थात् इस संसार में जिसकी कृति है वस्तुतः इस भूतल पर वही जीवित माना गया है। वैदिक साहित्य से सम्बद्ध ''ऋतंच सत्यं च'' लेख का

सार यह है कि ऋत् और सत् शब्द वेद से लेकर आधुनिक काल तक विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हैं। ऋत् तथा सत् शब्दों का साथ प्रयोग मननीय एवं श्रव्य है–

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनि निहितं च सत्ये।

सत्यवृतं सत्यमृत सत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः।।

''पुराण विद्या'' नामक ग्रन्थ में म.म. जी ने पुराणों एवं वैदिक ग्रन्थों का संकलन किया है।

जैसा कि ''श्रुति'' शीर्षक में बतलाया है कि सम्पूर्ण वस्तु केन्द्र पर आधृत रहती है–

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते।

तस्य योनिं परिपश्यति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा।।

सभी विद्याओं में प्रायः पुराण ही प्रधान हैं– पुराणानां सर्वविद्यासु प्राथग्यम् ''वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति'' ग्रन्थ में पुरातत्त्व ऋषियों, महर्षियों, आचार्यों, विद्वानों तथा लेखकों ने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। म.म. जी ने इस ग्रन्थ में भारतीय संस्कृति एवं वैदिक विज्ञान सम्बन्धी अनेक गुत्थियों को आपने इस व्याख्यान ग्रन्थ में सुलझाया है। वास्तव में उनका यह ग्रन्थ पठनीय, मननीय एवं चिन्तनीय है न कि आलोचनीय ।

म.म. चतुर्वेदीजी ने अनेक निबन्धों की भी सर्जना की है। 'वेदेषु यज्ञाः' निबन्ध में निबन्धकार ने वैदिक यज्ञों के आधारभूत प्राकृतिक यज्ञों के स्वरूपों का दिग्दर्शन कराया है। जैसा कि यजुर्वेद में लिखा है–

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवस्तानि धर्माणि प्रथमान्यसन्।

तेहनाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।

'पुराण परिशीलन' नामक ग्रन्थ में उन्होंने यह सिद्ध किया है कि पुराण आर्य जाति के सर्वस्व हैं। उन्होंने इन पुराणों को आर्य साहित्य के सुविस्तृत प्रासाद के आधार पर स्तम्भ रूप में, प्राचीन इतिहास मंदिर के सुवर्ण कलश के रूप में, मानव समाज को संस्कृति के पथ प्रदर्शक दिव्य प्रकाश के रूप में, तथा आर्य जाति के अनादिकाल से संचित विधाओं की सुदृढ़ मंजूषाओं के रूप में स्वीकारा है। कविकुलकमलदिवाकर

म.म. जी की दो कहानियाँ प्रसिद्ध हैं, पितुरुपदेशः तथा 'कश्चित्कविः' जो निश्चय ही अक्षय ज्ञानकोष की स्रोतस्विनियाँ हैं।

'कश्चित्कवि' में एक राजा तथा कवि के स्वरूप को प्रस्तुत कर यह सिद्ध किया है कि राजा और कवि में कवि ही श्रेष्ठ होता है। श्रव्य है एक सुभाषित पद्य–

विद्वत्वंच नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन।

स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।।

इस कहानी में किसी निर्धन किन्तु आत्म-सम्मान की भावना से ओत-प्रोत एक कवि का इतिवृत्त है। राज्याश्रय का भूयोभूयः अस्वीकार करने से कष्टमय जीवन व्यतीत करने वाला यह कवि अपनी वृद्धा माता को तीर्थ यात्रा कराने ले जाता है। नृप-भार्या के प्रणय प्रस्ताव को अस्वीकृत करने वाला किन्तु राज-महिषी की प्रतिष्ठा पर आँच भी नहीं आने देने से राजा सन्तुष्ट होकर कवि को विपुल धनराशि पुरस्कार में देता है। इस कहानी में समागत एक पद्य से चतुर्वेदी जी के पाण्डित्य का अनुमान सहज ही हो सकता है–

उन्नादाम्बुदवर्धितान्धतमसप्रभ्रष्टदिङ्मण्डले,

काले यामिक जाग्रदुग्रसुभट–व्याकीर्णकोलाहले।

कर्णस्या-सुहृदर्णवाम्बु बडवावन्हेर्यन्दतः पुरा,

दायातासि तदुम्बुजाक्षि कृतकं मन्ये भयं योषितां।।

वस्तुतः यह कहानी आत्मसम्मान, नैतिकता एवं लोभविहीनता को व्यक्त करने में सर्वथा सक्षम है।

'पितुरुपदेशः' कहानी का प्रकाशन संस्कृत साहित्य-सम्मेलन के मासिक मुखपत्र संस्कृत-रत्नाकर के सौलहवें वर्ष कार्तिक पूर्णिमा संवत २००९ में नवम् अङ्क में प्रकाशित हुई है। यह लघुकथा पाँच खण्डों में विभक्त है। इस कथा में कुछ धूर्त लोग किसी अध्ययनशील मेधावी छात्र की उसके पिता के पास शिकायत करते हैं जो वास्तव में झूँठी सिद्ध होती है। एक बार उसके पिता को एक पत्र मिलता है जो उसके पुत्र को दुराचारी एवं कामी सिद्ध करता है, इसी परिप्रेक्ष्य में वे लिखते हैं–

शैत्यं नाम गुणस्तवेवसहजः स्वाभाविकी स्वच्छता,

किं ब्रूमः शुचितां भवन्ति शुचयः स्पर्शेन यस्यापरे।

किं चातः परमं तव स्तुति पदं त्वं जीवनं, जीविनां

अर्थात् जल सर्वगुण सम्पन्न है और सभी प्राणियों का जीवन है परन्तु हमेशा नीच मार्ग में गमन करता है उसे भला कौन रोक सकता है। अन्ततः पुत्र अपने पिता को एक पत्र लिखता है जिसे पढ़कर पिता सन्तुष्ट हो जाता है।

इसी परिप्रेक्ष्य में पुत्र पत्र के माध्यम से पिता को संदेश व्यक्त करते हुए कह रहा है–

सुधांशोर्जातेयं कथमपि कलंकस्य कणिका,

विधातुर्दोषोऽयं न तु गुणनिधेस्तस्य किमपि।

स किं नात्रेः पुत्रो न किमुहरः चूड़ार्चनमणिः,

नवा हन्ति ध्वान्तं जगदुपरि किं वा न वसति।।

अर्थात् चन्द्रमा में जन्मजात कलंक है। यह कलंक विधाता की कृपा का ही परिणाम है। अर्थात् अपनी स्थिति बनाना, कार्य करना, सम्मान प्राप्त करना ये सब तो मनुष्य कर सकता है परन्तु यदि विधाता उसे जन्म से ही कलंकी बना दे तो उसका समाधान उसके पास नहीं है।

सत्य है, सम्पूर्ण भारत भू-भाग पर अपने वैदुष्य की छाप छोड़ने वाले विरले ही होते हैं। म.म. जी के सुपुत्र श्री शिवदत्त जी चतुर्वेदी ने उनकी महत्त्वपूर्ण अनेक रचनाओं का संकलन कर ''चतुर्वेद संस्कृत रचनावली'' नाम से वाराणसी से सन् १९६६ में प्रकाशित करवाई है।

शिव एवं शक्ति के समुपासक म.म. जी संस्कृति, संस्कृत, हिन्दी और सनातन धर्म के विभिन्न क्षेत्रों की 'अनुपम' सेवा करते हुए १० जून, १९६६ को वाराणसी में ब्रह्मलीन हो गये।

कवि के सुपौत्र डॉ. ईश्वरप्रसाद ने पत्रकारिता की इस प्रकार जानकारी दी है–

संस्कृत और हिन्दी भाषाओं के व्यापक प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में पत्रकारिता की महान् शक्ति से भी म.म. जी भली-भांति परिचित थे। देश के संस्कृत क्षेत्र की

नवोन्मेषशालिनी प्रतिभाओं को संस्कृत लेखन के लिए प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से विद्यार्थी अवस्था में ही म.म. जी ने जयपुर से ''संस्कृत-रत्नाकर' नामक मासिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया, जो कालान्तर में अ.भा. संस्कृत साहित्य सम्मेलन के मुख पत्र के रूप में सुविकसित एवं चिर-चर्चित हुआ। हिन्दी के ''ब्रह्मचारी'' और ''चतुर्वेदी'' जैसे सुप्रतिष्ठित मासिक पत्रों का सम्पादन एवं प्रकाशन भी म.म. जी ने कुशलतापूर्वक किया।

देश में सनातन धर्म के व्यापक प्रसार-प्रचार के क्षेत्र में म.म. जी का अद्भुत योगदान सर्वथा अविस्मरणीय रहेगा। इस पुनीत उद्देश्य की पूर्ति हेतु जहाँ एक ओर उन्होंने देश में हजारों की संख्या में धार्मिक सभाओं को सम्बोधित किया, वहीं दूसरी ओर समस्त भारतवर्ष में सनातन धर्म के अनुयायी अपना पूर्ण विकास करने में सक्षम हो सके। इन सनातन धर्म सभाओं के माध्यम से ही म.म. जी ने आर्यसमाज जैसे महान संगठन से टक्कर लेकर सनातन धर्म के प्राचीन सिद्धान्तों की रक्षा का प्रशंसनीय कार्य किया। गुरुकुल कांगड़ी में राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के मुख्यातिथ्य में तत्कालीन आर्य समाज के महान नेता प्रोफेसर श्री ईश्वरचन्द्र विद्यावाचस्पति से वर्ण व्यवस्था जन्मानुसार या कर्मानुसार विषय पर ऐतिहासिक शास्त्रार्थ कर म.म. जी ने वर्ण व्यवस्था का जन्मानुसार होना ही अकाट्य तर्कों से सिद्ध कर समस्त भारतवर्ष में सनातन धर्म के सिद्धान्त के विजय का डंका बजा दिया।

काशीप्रवास की अवधि में म.म. जी ने जहाँ एक ओर संस्कृत शोधार्थियों को शोध-निर्देशन किया वहीं दूसरी ओर धर्मानुरागियों को गीता प्रवचन का विशिष्ट अमृतपान भी कराया।

उन्होंने अपने विद्यागुरु विद्यावाचस्पति पंडित मधुसूदन ओझा के द्वारा आविष्कृत वैदिक विज्ञान के मार्ग का अनुसरण कर गीता के मार्मिक सूक्ष्म रहस्यों का प्रतिपादन अत्यन्त सरल भाषा में कर सके जनसाधारण तक पहुँचाने का सराहनीय प्रयास किया है।

इस गीता प्रवचन में म.म. जी ने शंकर, रामानुज, निम्बार्क एवं माध्वादि अनेक

आचार्यों के मतों का उल्लेख करते हुए गीता के आधुनिक व्याख्याता लोकमान्य तिलक, योगी अरविन्द तथा विद्यावाचस्पति पंडित मधुसूदन ओझा के सिद्धान्तों को समुचित रूप से विवेचित किया है। म.म. जी के ये प्रवचन गीता-प्रवचन व्याख्यानमाला नाम से तीन खण्डों में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित किये गये हैं।

वैदिक विज्ञान विषयक ओझाजी के दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिए म.म. जी ने ''वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति'' नामक प्रतिनिधि ग्रन्थ की रचना की, जो बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना द्वारा प्रकाशित की गई। परिषद् के द्वारा ही उनकी दूसरी प्रतिनिधि रचना ''पुराण परिशीलन'' प्रकाशित की गई, जिसमें वैदिक विज्ञान की दृष्टि से अनेक पौराणिक, ऐतिहासिक, आख्यानों एवं उपाख्यानों आदि की गंभीर, मार्मिक और वैज्ञानिक व्याख्या सरल भाषा में प्रस्तुत की गई है। इनके अतिरिक्त अन्य प्रमुख विषयों से सम्बन्धित म.म. जी के द्वारा रचित प्रायः दो दर्जन महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हैं। उनका बहुत-सा साहित्य अभी अप्रकाशित है जिसको श्री गिरिधर-साहित्यिक शोध संस्थान नामक संस्था द्वारा क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है।

निश्चय ही म.म. जी अपनी चतुर्दिक् प्रतिभा का विकास कर लोकोपकार करते रहे। अतः उन्होंने ''कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्'' जैसे ध्येय वाक्य को सार्थक कर दिखाया। सुरवाणी के रक्षार्थ एवं प्रसारार्थ की गयी अमिट सेवाएँ स्तुत्य, अनुकरणीय एवं संग्रहणीय हैं। निश्चय ही आपका व्यक्तित्व एवं कृतित्व राजस्थान की पावन धरा पर स्वर्णाक्षरों में लिखा जाने योग्य है। वर्तमान में भी ''गिरिधर शोध संस्थान'' नामक संस्थान जयपुर नगरी में चिर-चर्चित है जिससे अनेक शोधार्थी अपनी ज्ञान पिपासा से तृप्त होते हैं।

पं. चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी'

इस अध्याय में पं. चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' ने 1912 में ऐतिहासिक महाकाव्य पृथ्वीराजविजय का सम्पादन किया था तथा महाभारत जैसे विशाल ऐतिहासिक ग्रन्थ का अंग्रेजी में अनुवाद किया और 1915 में 'उसने कहा था' हिन्दी की चर्चित कहानी के कारण ये विश्वभर में छा गए।

अपरा काशी की विद्वन्मणिमाला के प्रकाशक एवं हिन्दी साहित्य के देदीप्यमान मार्तण्ड पं. चन्द्रधर गुलेरी जी की कालजयी कृति ''उसने कहा था'' इस हिन्दी कथा के लेखक होने के कारण हिन्दी साहित्य इतिहास में प्रख्यात हो गए। साथ ही समालोचक पत्र के संपादक, काशी हिन्दू- विश्वविद्यालय प्राच्यविद्या एवं धर्ममहाविद्यालय के प्राचार्य, पुरानी हिन्दी नामक शीर्षक के भाषाशास्त्रीय प्रबन्ध के लेखक एवं देश-देशान्तरों में भारतीय विद्या-भाषा शास्त्रादि विषयों के तलस्पर्शी विवेचक के रूप में देश-देशान्तरों में आप सुविख्यात हैं, किन्तु संस्कृत के प्रौढ़ कवि और लेखक होने का अंदाजा कम ही लोगों को ज्ञात है। इतना ही नहीं ज्योतिष, प्राच्य विधाएँ, अँग्रेजी आदि भाषाओं, भाषाशास्त्र, संपादन कला एवं वास्तुविद् के रूप में जगजाहिर तो रहे, किन्तु संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित होने की बात बहुत ही कम लोग जानते हैं। हिन्दी साहित्य का पल्लू पकड़े लोग तो भला इन्हें हिन्दी मनीषी तक के दायरे में ही रखते हैं, किन्तु हकीकत तो कुछ और ही है। अर्थात् संस्कृत के क्षेत्र में किया गया इनका अवदान किसी दृष्टि से कम नहीं है। या यूँ कहें कि हिन्दी साहित्य के बराबर भी संस्कृत साहित्य में भी इनका वर्चस्व बरकरार था। आप मूलतः संस्कृत के पण्डित थे।

पण्डितप्रवर गुलेरी जी श्री शिवरामजी के ज्येष्ठपुत्र थे। पर्वतीय सारस्वत ब्राह्मण परिवार में लब्धजन्मा पं. श्री शिवरामजी कांगड़ा प्रान्तीय 'गुलेर' ग्राम के राजपुरोहित थे। दुर्दैववश गुलेरी जी के पिताश्री पं. श्री शिवराजजी की मृत्यु के पश्चात् इनके परिवार में ज्येष्ठ पुत्र एवं पाठ के सूत्रधार पं. श्री चन्द्रधर शर्मा, श्री जगद्धर शर्मा एवं श्री सोमदेव शर्मा नामक तीन पुत्र थे। कविकुलशिरोमणि भट्ट मथुरानाथ शास्त्रीजी ने गुलेरी

जी के पिताश्री के संस्मरण में उनके प्रति अपने विचारों को इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

''संस्कृतमहाविद्यालये अहं तेषामत्यन्तम्प्रेमपूर्वकङ्गभीरया वाण्या मन्दमन्दस्वरेणोच्चारितं समध्यापितञ्च प्रत्यक्षं दृष्ट्वान् श्रुतवाँश्च। पं. श्रीलक्ष्मीनाथ शास्त्रिमहोदयैः सह ते वेदान्ताध्यापका आसन् तदानीमहं व्याकरणशास्त्रस्य विद्यार्थी अभूवम्।''

इसी प्रकार पण्डितप्रवर स्वं. श्री भट्ट मथुरानाथ शास्त्री जी ने अपने जयपुर वैभव नामक काव्य के 'सुधीचत्वर' रचना में घनाक्षरी छन्द में स्व. शिवराम जी शर्मा के परिप्रेक्ष्य में लिखा है–

''येषां शब्दशास्त्रे प्रौढ़पाण्डित्यं प्रसिद्धमभू–
द्वेदान्तेऽपि मार्मिका न केन स्माऽभिनन्द्यन्ते।
राजमोदमन्दिरेऽपि मान्या यद्व्यवस्थाऽभव–
द्विद्यायै वदान्या येऽद्य विद्वद्भिर्मुहुरिन्द्यन्ते।।
अध्यापनसिद्धाः शान्तिधैर्यार्जवमुख्यगुणैः,
सर्वविधसौख्यैर्जीवने ये स्माऽति वन्द्यन्ते।
आदर्शायितोच्च-सदाचाराश्रितचर्याः सदा
श्रीश्रीशिवरामसूरिवर्याः प्रणिवन्द्यन्ते।।''

ऐसे आदर्श एवं सुयोग्य पिता की सुयोग्य सन्तान के रूप में पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी का जन्म गुलाबी नगरी जयपुर में ज्येष्ठ पुत्र के रूप में 07 जुलाई सन् 1883 ई. में हुआ ।

श्री गुलेरी जी की प्रारंभिक शिक्षा अपने पिताश्री की छत्रछाया में अध्ययन करते हुए ही उन्होंने मात्र छः वर्ष की अल्पावस्था में ही संस्कृत बोलने लगे थे। तथा 11 वर्ष में संस्कृत कविता तक लिखने लगेथे। इससे इनकी प्रखर प्रतिभाप्रभा का परिचय मिलता है।

शैक्षिक क्षेत्र में ही आपने स्थानीय महाराजा कालेज से 1893 ई. से 1903 ई.

तक नियमित अध्ययन करते हुए प्रथम श्रेणी में हाईस्कूल उत्तीर्ण की तथा 1907 में प्रयाग विश्वविद्यालय में बी.ए. में सर्वप्रथम रहकर इन्होंने न केवल वैयक्तिक प्रत्युत् अपराकाशी जयपुर नगरी की जो पताका देश में फहराई थी, इसे ही लक्ष्य कर जयपुर रियासत की ओर से हाथी पर उनकी सवारी निकाली गई थी। अध्ययन की ललक एवं जिज्ञासा के कारण आपने यहीं विराम नहीं लिया बल्कि हिन्दी, प्राकृत, अपभ्रंश-अंग्रेजी जर्मन, फ्रेंच, लैटिन एवं दर्शनादि विविधभाषाओं एवं शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन किया। साथ ही धर्मशास्त्र, व्याकरण, वेद-पुराण आदि का प्रगाढ़ वैविध्य के कारण जो निबन्ध, शोधलेख, पद्य एवं संपादक टिप्पणियाँ लिखी गई हैं, उससे निःसंदेह आपके विलक्षण संस्कृत पाण्डित्य को संकेतित किया जा सकता है। ध्यातव्य है कि ब्रिटिश साम्राज्य के प्रभान के कारण उच्चपद लाभार्थ एवं स्वप्रतिष्ठार्थ आधुनिक विषयों का अध्ययन कर मात्र एक भाषा का पल्लू न पकड़कर सभी भाषाओं एवं विषयों का अध्ययन कर जो वैदुष्य प्राप्त किया, उसके कारण निःसंदेह आप जगजाहिर हुए।

व्यावसायिक दृष्टि से आप काफी समय तक अजमेर की सुविख्यात संस्था 'मेयो' कालेज में धर्म एवं प्राच्य विद्याओं के प्रोफेसर के रूप में उल्लेखनीय सारस्वत कार्य करते हुए अपने अध्यापन क्षेत्र में नव आयाम स्थापित किए। इसी दौरान अध्यापन के साथ-साथ ही अंग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत भाषाओं में लिखी गई इनकी रचनाएं वैविध्य के कारण देश में सर्वत्र तहलका मचाने लगीं। यह बड़े गर्व का विषय है कि सन् 1915 से जब आप इस कॉलेज में सेवारत थे तभी आपकी चर्चित एवं विश्वविख्यात ''उसने कहा था'' नामक कहानी का प्रणयन हुआ। इसी कहानी के कारण पं. गुलेरी जी हिन्दी साहित्य में ख्यातनाम रहे हैं।

हिन्दी साहित्य के तो आप जाने-माने कवि एवं लेखक थे ही साथ ही संस्कृत-भाषा को समृद्ध एवं परिवर्धन के साथ ही राजस्थान के संस्कृत-कृतिकारों को आपने एक नव दिशा दी। संस्कृत में गद्य एवं पद्य दोनों ही विधाओं में रचना करना आपके बाँये हाथ का खेल था। इसी कारण 1910 से 1914 इन पाँच वर्षों की अवधि में 'संस्कृत-रत्नाकर' नामक मासिक पत्र में न जाने कितने लेख, पद्य एवं कविताएं प्रकाशित

हुई हैं। विशेष रूप से वर्ण्य बिन्दु यह है कि गद्य-विधा में संस्कृत-रत्नाकर के 8वें व 9वें वर्षीय अङ्कों में 26 पृष्ठों में गोदान शब्द का स्पष्टीकरण करने हेतु लिखा गया एक शोधलेख है। ''वैदिक पृषताः'' नाम से प्रकाशित इस लेखमाला में ''गोदानम्'' नामक गवेषणात्मक लेख इनकी प्रगाढ़ एवं गम्भीर अध्ययन परम्परा को प्रकट करता है। ऐसा लेख वैदिक साहित्य, व्याकरण, धर्मशास्त्र एवं साहित्य विषयों पर असाधारण अधिकार रखने वाले पण्डित प्रवर द्वारा ही संभव है। जाहिर है कि ऐसे बहुमुखी प्रतिभा के धनी गुलेरी जी के करकमलों द्वारा विषयवार सप्रमाण विवेचन इनकी विलक्षण मेधा का परिचायक है। द्रष्टव्य है– ''इनके द्वारा विरचित वैदिक पृषताः 'गोदानम्' की संक्षिप्त झलक–

ॐ॥ वैदिकविज्ञानमहोदधेर्गुरूपदेशतीर्थे निषेदुषा पुराणाव्याख्यान-वीचिभिर्दोलिता ये केचन पृषताः समनुभूयन्ते तेषु कतिपये भवदीयपाठकेभ्य उपहारीकरिष्यन्ते।

तत्र प्रथमः

महाकविकालिदासकृतौ रघुवंशे तृतीयसर्गे त्रयस्त्रिंशे पद्ये पठ्यते

'अथास्य गोदानविधेरनन्तरं

विवाहदीक्षां निरवर्तयद् गुरुः'

तत्र 'गावः केशा दीयन्ते अवखण्ड्यन्ते अत्रे'त्याधारे ल्युटि गोदानं नाम कर्मेति व्याख्या। प्रमाणे मल्लिनाथः केशवकोशात्–

'गौर्नादित्ये बलीवर्दे कृतुभेदर्षभेदयोः।

स्त्री तु स्याद्दिशि भारत्यां भूमौ च सुरभावपि।

पुंस्त्रियोः स्वर्गवज्राम्बुरश्मिदृग्बाणलोमसु।'

इत्युद्दधार। तच्च गोदानम्–

'केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते।

राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्व्यधिके ततः॥

इति मनुना (2.65) समानार्थेनाप्यपरेण शब्देन विहितम्। प्राचीनगृह्यसूत्रेषु तु गोदाननाम्नैव वेदग्रहणपरको विवाहपूर्वकः समावर्तनापरनामा संस्कारो व्यवह्रियते। यथा

''चूडोपनयनगोदानविवाहाः। एतेन गोदानम्। षोडशे वर्षे।'' इत्याश्वलायनगृह्यसूत्रे (1.18.1); ''अथातः षोडशे वर्षे गोदानम्। चूडाकरणेन केशान्तकरणं व्याख्यातम्। ब्रह्मचारी केशान्तान् कारयते सर्वाण्यङ्गलोमानि स हारयते।'' इति च गोभिलगृह्यसूत्रे (3.1.1-4) समुपलब्धेः। आभ्यामवतरणाभ्यामिदमपि प्रतीयते यद्गोदानमिति नामास्य संस्कारस्य पुरा योगरूढमासीत्, तदेव गृह्यासु प्रायुज्यत; तद्व्याख्यानभूतं च केशान्तपदं कालवशात्पद्यबद्धस्मृतिषु तस्मिन्नेव संस्कारे रूरोह। अत एव केशान्तकरणमिति कृञ् केशान्तान् कारयते इत्यत्र बहुवचनं च।

अथ कोऽयं श्रौतो गोदानसम्बन्धी विधिर्यस्यारोपेण गृहस्यापि गोदानप्रसाधनकर्म्मणो गोदानत्वं जात? मिति प्राप्ते ब्रूमः। सोमयागान् तत्प्रकृतिमग्निष्टोमं वा विधित्सुः पूर्व दीक्षते। तत्र कृष्णयजुर्वेदब्राह्मणे विधीयते ''केशश्मश्रु वपते नखान्निकृन्तते'' तदुत्तरं चार्थवादेन कर्म्मैतत्स्तूयते ''मृता वा एषा त्वगमेध्या यत्केशश्मश्रु मृतामेव त्वचममेध्यामपहत्य यज्ञियो भूत्वा मेघमुपैति स्वस्त्युत्तराण्यशीयेति''। कुशलेनोत्तराणि कर्माणि साधयेयम्। अत एव ''आप उन्दन्तु जीवसे दीर्घायुत्वाय वर्चसे'' इति मन्त्रेण गोदानक्लेदनं वपनपूर्वाङ्गम्। अयं विधिः प्रतीकोल्लेखेन वाजसनेयिब्राह्मणादेवात्रोद्धृयते, न ब्राह्मणान्तरात्; लेखविस्तारभिया। शाखाभेदे मन्त्रभेदमपहाय नास्ति तादृशो भेदश्च।

एवं दीक्षणीयेष्टिरारभ्यते। श्रुवेणोपघातं पञ्चाहुतयो या होतव्या दीक्षणोयष्ट्यारम्भे, तासु मन्त्राः– ''आकूत्यै प्रयुजेऽग्नये स्वाहा; मेधायै मनसेऽग्नये स्वाहा; दीक्षायै तपसेऽग्नये स्वाहा; सरस्वत्यै पूष्णेऽग्नये स्वाहा; आपो देवीर्बृहतीर्विश्वशम्भुवो द्यावापृथिवीऽउरोऽअन्तरिक्ष। बृहस्पतये हविषा विधेम स्वाहा। विश्वो देवस्य नेतुर्मर्त्यो बुरीत सख्यम्। विश्वो राय इषुध्यक्ति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा।'' (शुक्लयजुषि 4।7–8)

न केवलं 'अमेध्यां त्वचमपहत्य यज्ञियो भवती' त्येव वपनकर्म प्राप्तं, अस्त्यन्यदप्यस्याभिरूपब्राह्मणं प्रतिपादकं तस्यावश्यं कर्तव्यत्वसूचकं च। दीक्षारूपं यज्ञियं कर्म जन्मान्तररूपमेव; लौकिकं पापमयं जीवनं परित्यज्य यज्ञं-सोमस्य राज्ञः साम्राज्यं-पूतत जन्म श्रयतो दीक्षितस्य दीक्षैव गर्भान्तर-धारणम्। अत एव ब्राह्मणो मुहुर्मुहुर्दीक्षितस्य सा सा कर्तव्यतोपदिष्टा, या या तस्य गर्भस्थेन सादृश्यं विदध्यात्। यथा शतपथब्राह्मणे– ''स

जघनेनाहवनीयमेत्यग्रेण गार्हपत्य९सोऽस्य संचरो, ...ऽअग्निर्वै योनिर्यज्ञस्य, गर्भो दीक्षितो, ऽन्तरेण वै योनि गर्भः संचरति, स यत्स तत्रैजति त्वत्परि त्वदा वर्तते तस्मादिमे गर्भा एजन्ति त्वत्परि त्वदावर्तन्ते।...." (3.3.28); "उद्गृभ्णीते वा एषोऽस्माल्लोकाद्देवलोकमभि यो दीक्षते..." (3.4.1); "गर्भो वा एष भवति यो दीक्षते स छन्दा९सि प्रविशति, तस्मान्न्यक्नाङ्गुलिरिव भवति, न्यक्नाङ्गुलय इव हि गर्भा;" (3.5.6); "अथ मेखलां परिहरते। सा वै शाणी भवति, मृद्व्यसत् इति न्वेव शाणी; यत्र वै प्रजापतिरजायत गर्भो भूत्वैतस्माद् यज्ञात् तस्य यन्नेदिष्ठमुल्वमासीत्ते शणाः, तस्मात्ते पूतयो वान्ति; यद्वस्य जराय्वासीत्तद्दीक्षितवसनं, अन्तरं वा उल्बं जरायुजो भवति, तस्मादेषान्तरा वाससो भवति; स यथैतः प्रजापतिरजायत गर्भो भूत्वैतस्माद् यज्ञात्" (3.5.10.11); "अथ नीविमुद्गूहते। अर्थ प्रोर्णुते" गर्भो वाऽएष भवति यो दीक्षते प्रावृता वै गर्भा उल्बेनेव जरायुणव तस्माद्वै प्रोर्णुते (3.4.15.16); "कृष्णविषाणा सिचि बध्नीते। तां वाऽउत्तानामिव बध्नाति उत्तानेव वै योनिगर्भं बिभर्ति; अथ दक्षिणां भ्रुवमुपर्य्युपरि ललाटमुपस्पृशतीन्द्रस्य योनिरसीति, इन्द्रस्यह्येषा योनिः.....।"

अत एव गर्भसादृश्यसम्पादनाय दीक्षितय केशश्मश्रुवपनं नखनिकृन्तनं चावश्यं प्राप्तं; न क्वापि प्ररूढकेशश्मश्रुरुन्नखो वा गर्भः कोऽपि श्रुतो लोमशो वा गन्धारीणामविकेव। तच्च वपनं प्राधान्येन गोदान एवेति दीक्षापूर्वाङ्गभूतं वपनमेव श्रौतो गोदानसम्बन्धी विधिर्गोदानविधिर्यदुत्तरं दीक्षा निर्वर्त्यते। न च स्नानाभ्यञ्जनादिकमानन्तर्यविघातकमिति वाच्य- मव्यवहितानन्तर्यस्यापेक्षैव नास्ति; विप्रकृष्टानन्तर्यमप्यानन्तर्यमेव, यज्ञकर्मण उत्तरोत्तरं सन्तानान्मध्ये रोधाभावादान्तर्यमव्याहतं; मेध्यत्वसम्पादककर्मणां सर्वेषामेव प्रधानं प्रथमं च गोदानकर्म, उपलक्ष्यते च तेन सर्वमभ्यञ्जनादि, अत एव प्रधानकर्मणो दीक्षया आनन्तर्यमेव प्रधानं प्रथमं च गोदानविधेरिति चतुर्भिः। तस्माद् गोदानविधेरनन्तरं दीक्षेति वक्तुं समुचितम्।

अत एव गृह्योक्तं गोदानविधिं लिखन्गोदानशब्दस्मरणमात्रेण जातश्रौतगोदानवपन-तदुत्तरदीक्षापरिस्फूर्तिर्महाकविर्विवाहदीक्षामिति पदे कमप्यद्भु तं चमत्कारं पुपोष क्षेमेन्द्राभिष्टुतं च स्वीयं वैदिककल्पपरिचयं ददौ। इतरथा दीक्षापदोपयोगस्य वैयर्थ्यापत्तेः। न च "दीक्ष मौण्ड्येज्योपनयनव्रतादेशे'ष्विति धातुपाठे विवाहार्थो व्रतादेशे गत इति वाच्यम्। यथा यथा

प्रयोगोपलम्भस्तथा तथा धातुपाठार्थोपचयः; न तु धातुपाठमाश्रित्य शब्दघटनं कुम्भकारवत्। समानार्थेषु वा सदृशार्थेषु वा शब्देषु सदृशो वर्णसमुदायो धातुत्वेन गृह्यते, प्रयोगबाहुल्याविरुद्धश्चार्थस्तत्र तस्य नियम्यते। ततः शब्दौघस्य भ्रमणेन नवनवार्थान्भिजति शब्दे वृद्धिं यात्यर्थमपारायणमपि।''

आप जयपुर से प्रकाशित की जाने वाली 'समालोचक' पत्रिका के साथ ही काशी नागरी प्रचारिणी सभा नामक पत्रिकाओं के संपादक भी रहे। आपके प्रखर पाण्डित्य के कारण महामना मदनमोहन मालवीय जी ने आपको हिन्दू विश्वविद्यालय में संस्कृत अध्यापन का दायित्व भी सौंपा था, जिसे आपने बखूबी निभाया। इससे पूर्व आपने खेतड़ी हाऊस एवं जयपुर हाऊस आदि स्थानों पर प्रशासनिक कार्य भी किया।

सन् 1912 में 'पृथ्वीराजविजय' नाम महाकाव्य की बड़ा ही वैदुष्यपूर्ण संपादन कर गुलेरी जी ने इसकी समीक्षात्मक भूमिका भी लिखी जो आज साहित्येतिहास में अजर-अमर है। ''लब्धनोबेलदक्षिणः कविः रवीन्द्रनाथ ठाकुरः'' नामक शीर्षक से 'संस्कृत रत्नाकार' के 8 वें वर्ष के 12 वें अङ्क में प्रकाशित यह लेख इन्होंने 1913 में रवीन्द्रनाथ ठाकुर को नोबेल पुरस्कार मिलने पर लिखा। गौरतलब है कि 1920 में गुलेरी जी को मालवीय जैसे विद्वानों के अनुरोध पर काशी जाना पड़ा किन्तु हा हन्त! यह महान खेद का विषय है कि इनका निधन सितम्बर 1922 में अर्थात् 39 वर्ष की अल्पावस्था में ही हो गया। अर्थात् गुलेरीजी यहाँ अपनी अधिक सेवाएं न दे सके।

ध्यातव्य है कि जब आप मेयो कॉलेज में प्रोफेसर थे उसी दौरान अंग्रेजी का सम्पर्क समूचे देश के साथ ही राजस्थान में विशेषकर रहा। उसी वेला में मेयो कॉलेज में ब्रिटिश सरकार के प्रति गहरी सहानुभूति पनप चुकी थी साथ ही विख्यात विद्वानों को 'महामहोपाध्याय एवं रायबहादुर जैसी पदवियों का प्रलोभन देकर अपना प्रशंसक बनाने की परिपाटी भी शुरू हो गई थी। रायबहादुर बॉकेराय जैसे विद्वानों ने सम्राट पंचम जार्ज के लिए कुछ लिखने को प्रेरित किया तो भला वो एक प्रोफेसर पद पर रहते हुए और वो भी मेयो कॉलेज में इस अनुरोध को कैसे ठुकराया जा सकता था?

उन्होंने बड़ी ही मार्मिक शैली में यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि मान न

मान मैं तेरा मेहमान अर्थात् यदि पंचम जार्ज हमारे द्वार तक आ ही गया है तो अब देशवासी भी उसे सहर्ष आने दे रहे हैं साथ ही इसमें भारतीय संस्कृति की 'अतिथि देवो भवः' की स्पष्ट झांकी भी दिखाई दे रही है। पंचम जार्ज को समर्पित ग्रन्थ में गुलेरीजी की कविता भी प्रकाशित हुई। पठनीय है एक पद्य–

''वयमपि तमेव भूपं तद्राज्यस्याजरत्वमीहानाः।
हर्षेण सादयामो देहल्यां हृदयदेहल्याम्।।''

लार्ड हार्डिज द्वारा दिल्ली को नव राजधानी के रूप में अङ्गीकृत कर महोत्सव को लेकर जब किसी ने उन पर घातक आक्रमण किया था। अतः उनकी जीवन रक्षार्थ ही भारतदेश के प्रत्येक भाग में प्रार्थना सभाओं का आयोजन रखा गया था। शृंखला की इस कड़ी में जयपुर के मनीषियों ने पंचम जार्ज की शुभकामना हेतु जो सभा (26 दिसम्बर 1912) की थी उसमें प्रायः सभी पंडितों ने भाग लिया था साथ ही गुलेरीजी ने भी अपने कुछ पद्य प्रस्तुत किये थे तथा 27 जनवरी 1913 को लार्ड हार्डिज के स्वस्थ होने पर प्रमोद सभा के आयोजन में उन्होंने लिखा है–

'ऊज्झितगदशयनफनस्तीर्णार्युदधिः सकान्तिरमणीकः।
विधिनियमसभाद्युमणिर्दिष्ट्याद्य चकास्ति हार्डिजः।।'

खैर, देश के शिखर मनीषीगण राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत पक्षों का ही समर्थन किया करते थे। इसका जीता-जागता उदाहरण है सन् 1905 में प्रकाशित 'समालोचक' पत्र में गुलेरीजी ने लिखा है कि विदेशी की अपेक्षा स्वदेशी उत्तम है। अर्थात् विदेशी वस्तुओं की होली जलने पर ही हमें मोक्ष प्राप्त संभव है–

''विदेशवस्तुनिर्मुक्तिः कथं मे स्यात्कदा विधे।
इति या सुदृढ़ा बुद्धिर्वक्तव्या सामुमुक्षुता।।''

राजभक्ति से प्रेरित होकर पं. श्री गुलेरीजी ने प्रत्येक हिन्दू भाइयों के लिए प्रतिदिन पठनीय प्रार्थना सन् 1914 में संस्कृत-रत्नाकर के नवम अङ्क में दो पद्यों में लिखी गई थी। द्रष्टव्य है उसकी मनोरम मननीय छटा–

धर्मो यतो जगदधीश! ततः सदा त्वं

मूतिर्जयश्च सततं हि ततो यतस्त्वम्।
धर्माय युद्धयति चमूर्नृपजार्जभक्ता
तस्यै जयं परम कारुणिक! प्रयच्छ॥
जित्वा रिपूञ्जगति शान्तिमुखं वितन्वन्
संघोषितो जयरवैर्निजवाहिनीभिः।
साम्राज्यपालनमकण्टकमादधानो
जीव्याच्चिरं नरपतिर्भवतः प्रसादात्॥ इति।

विदेश-यात्रा करने से पूर्व जहाज को किस प्रकार से शुद्ध करके उसकी पूजा की जाय इसे लक्ष्य कर **'समुद्रयात्रा संस्कारेषु पोतसंस्कार-विधिः'** नामक शीर्षक से बडा ही मनोरंजक एवं तथ्यपूर्ण पूर्ण लेख छपा था, जिससे सभी तत्कालीन विद्वान् आश्चर्य की अनुभूति कर रहे थे।

इन्होंने 22 जुलाई 1905 को ''शिवाऽर्चनम्'' नामक शीर्षक से संसार के पालक एवं संहारक भगवान् शिव की स्तुतिपरक रचना कर अपने व्यक्तित्व क्षेत्र में भक्तिभाव से ओतप्रोत साथ ही शिवभक्त होने का प्रबल साक्ष्य प्रमाण इस कविता से स्वयं सिद्ध है–

शिवाऽर्चनम्

''सृजते, पालनकर्त्रे, संहर्त्रे धारयित्रे नः।
ईशित्रे, परपित्रे, नमो नमस्ते जगद्भर्त्रे।

नहि हर! प्रतिमासु रतिः कृता,
न च मया श्रुतयः परिशीलिताः।
भवतश्चरणाम्बुजे मुनिव्रते,
मम नतिप्रतिपादनधृष्टता॥1॥

सकरुणं रणतो भवतः पुरो
नहि मम क्षणदाक्षणादाजनि।
गणपतात! कुतः कृपणो भवान्,
वितरणे करुणैककणस्य मे॥2॥

विदितमेव शिवोऽस्य शिवैः कथम्,
जगदनिष्टविचारणचुञ्चुभिः।
तिलकलिप्तललाटमदालसै-
र्विषयकीटजनैरवलोक्यसे ?॥3॥

लालाटिकोऽपि यदि लागुडिकस्तव स्याम्,
''नायं प्रसङ्ग'' इति भङ्गिविनस्ततभ्रूः।
देशाय, सत्यमिति भीषितदेववृन्दात्,
स्वातन्त्र्यशौर्यसुषमामिह दापयेयम्॥4॥

तदपि सोऽहमिति श्रुतप्रत्ययाद्,
भगवतो भवतो दिशि कर्षितः।
किरति किं न रवेर्दिशि तत्प्रियो,
लघुरपि स्वकराणि स प्रस्थरः॥5॥

भावत्कपूजनमिषेण सुरालयेषु।
पापानि कानि च कृतानि, मया महेश!
दोषो न मे, यदि भवेद्भव दर्शयस्व,
पापोपयोगि, निजवासविहीनदेशम्॥6॥

माले मलीनासि, जपापसर्प,
सन्ध्ये न सन्धिर्घटते तवात्र!
पारायणासि त्वमरण्यरोदी,
त्वं भस्म भस्मैव, नतिर्न नुत्या॥7॥

ये साधनत्वेन वृता भवन्त-
स्ते बाधकत्वं गतवन्त इत्थम्।
दम्भार्पितोत्कोच वशीकृताः स्थ,
तच्छस्त्रभूताः कुटिला वृथैव॥8॥

भगवान् भास्कर की प्रचण्डता, पृथ्वी की तपन एवं देहधारियों की देह से पसीने

की बूँदे इत्यादि ''ग्रीष्म-ऋतु' की परिचायक घटना का कवि ने अपनी 'ग्रीष्मः' नामक कविता में मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। पठनीय है यह कविता–

ग्रीष्मः

''प्रस्वेदाप्लुतमाननं जलपटीयोगैः समुत्पुंसतः
क्लान्तैर्बाहुविवर्तनैर्भ्रमयतो निर्विश्रमं वार्जनम्।
सन्तापोऽघृणशापशेष इव मे नायाति निःशेषतां
शान्तिः कामिनि धीरतेव न मनाक् स्वप्नेऽपि सम्भाव्यते॥1॥

धूलीतापो नयनपटलं तर्षतापश्च कण्ठं
रथ्यातापश्चरणयुगलं भानुतापोऽपि शीर्षम्।
सर्वाण्यङ्गानि च परिसरंस्तप्तवायुप्रवाहः
कष्टं नित्यं तपति जनतामेष पञ्चाग्नितापः॥2॥

दिननायक-खरदशशतकरकरटाकृष्यमाणसारोयम्।
राज्ञोऽपि हन्त! लोको न किमप्याप्यायनं लभते॥3॥

कोणे निलीय निभृतं दिवसं समाप्य
वीथीषु शङ्कितपदं रजनौ भ्रमामः।
सम्मर्दतो भयजुषो विजने शयामः
कालेन चित्रमिह चौरसमाः कृताः स्मः॥4॥''

पं. गुलेरीजी ने एक बार लार्ड हार्डिज को एक पद्य के माध्यम से स्वराज मिले या न मिले परन्तु सुराज्य अवश्य प्राप्त करने की कामना अभिव्यक्त की है–

''स्वराज्यमस्तु मा वा त्वत्कीर्तेः सम्प्रसारणम्।
शाब्दिकाः वयमिच्छामः तदादौ सम्प्रसारणम्॥''

संस्कृत काव्य रचना पर इनके असाधारण अधिकार का परिचय इनके द्वारा संवत् 1971 में विरचित 'पंचनददेशस्तवः' नामक पद्य संग्रह अपने आप में पंजाब की सम्पूर्ण पृष्ठभूमि एवं संस्कृति को गागर में सागरवत् समेटे है। गौरतलब है कि इसमें वेदकालीन कथानक को उपस्थित कर कवि ने पंजाब की पाँच नदियों का इतिहास, सरस्वती घाटी

की पाँच नदियाँ मिलकर 'सरस्वती' का नामकरण, पूर्व में सरस्वती नदी का प्रकट होना एवं तत्पश्चात् अन्तर्धान हो जाना आदि प्रसंगों का इस रचना में कवि ने रहस्योद्घाटन कर संस्कृत-जगत् के लिए अत्यन्त उपयोगी कार्य किया है। यथा–

''हिमवन्मुकुटायाथ सिन्धुलौहित्यवाससे।
रत्नाकरान्तरीयाय तस्मै देशात्मने नमः।
काश्मीरचर्चितशिरा राङ्कवोष्णीषमण्डितः।
सोऽनर्घमुक्तापादार्घैः सिंहलेन सदार्चितः।
घृतलोहाङ्गुलित्राणो दक्षिणः परवीरहा।
पञ्चशाख इवाभाति तस्य पञ्चाम्बुसंज्ञितः।
''सुस्रोतसः किं नु यन्ति पञ्च नद्यः सरस्वतीम्।
आहो सरस्वतीदेशे पञ्चधेहाभवत् सरित्।
इति बभ्राम यत्रासौ ऋषिर्मन्त्रकरः पुरा।
रसायाश्च रसस्यास्य समृद्धिर्वर्णनातिगा।
इतो राजन्वती भूमिरुतो राजवती धरा।
इतः पञ्चनदो देश उतः प्राणहरो मरुः।
यत्र द्राक्षेक्षुगोधूमशाल्याढ्ये पीवरो वृषः।
दयते कण्टकीबद्धतृण्णं धन्वक्रमेलकम्।''

इस प्रकार उक्त रचना के माध्यम से कवि ने भारत देश, पर्वतराज हिमालय, पाँच नदियों, वृक्षों तथा वहाँ के ऋषियों, राजाओं एवं विद्वानों का वर्णन कर अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है।

कवि कि इस रचना के एक पद्य पर यदि शोध करें तो पायेंगे कि इस पद्य का रहस्य बिना निरुक्त एवं अष्टाध्यायी के दुर्लभ है–

''तत्र स्रोतस्वनी पुण्या या वशिष्ठं न्यपाशत्।
यदैश्वर्येर्ष्यया ज्येष्ठा सपत्नी शतधाद्रवत्।।
भूर्देवदुर्लभा रम्या तामुदग् भाति पार्वती।
कूपानू सुधोदकान् यत्स्थांश्चिरं सस्मार पाणिनिः।।''

इसी प्रकार संस्कृत रत्नाकर के 11 वें 12वें वर्ष के संयुक्ताङ्क में ''सामयिक-समासोक्तयः'' नामक शीर्षक से मंगलाचरण रूप में कविप्रवर गुलेरीजी ने तात्कालिक स्थितियों का निगूढ़ चित्रण करने वाली इस कविता की सर्जना कर अपनी प्रौढकाव्यसर्जना का बखूबी परिचय दिया है–

''जयति करजराजिर्दानवेन्द्रस्य वक्षो
नलिनदलविदारं दारयन्ती मुरारेः।
धनजनबलदर्पो धर्ममार्गादपेतं
प्रभवति नहि पातुं या लिलेखेति सत्यम्॥1॥

विविधविबुधतेजः पुञ्जपुञ्जीकृताङ्गा
तदुपचितमहास्रस्तोमदुर्धर्ष-मूर्तिः।
जयति रचितहासा कापि शक्तिः परा द्राक्
शमयति महिषं या स्मार्धनिष्क्रान्तमेव॥2॥

दशशतभुजयुग्माकृष्टशस्त्रं प्रमत्तं
विरचितदुरवध्यं यो व्यधात् कार्तवीर्यम्।
निशितपरशुधारास्नाननिर्धूतपापं
जयति शिवविनीतो जामदग्न्यो महात्मा॥3॥

दनुजदलनदीक्षासप्ततन्तौ मघोनो
भुवनवलयजेताध्वर्यवं यश्चकार।
रविशशिकूलभूतो भारताधीश्वराणां
जयति पुरुमहिम्नां क्षत्रियाणां स वंशः॥4॥''

इनकी हिन्दी रचनाओं की तरह ही संस्कृत रचनाएं प्रौढ़ एवं भावगाम्भीर्यपूर्ण रही हैं। इनकी बहुत सी रचनाएं 'संस्कृत-रत्नाकर' में प्रकाशित हुई थीं। संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में गुलेरीजी ने कीर्तिमान स्थापित किया है। आपने 1902 से 1937 तक जयपुरस्थ नागरी भवन से 'समालोचनाङ्क' नामक पत्र में 'सम्पादकीय टिप्पणियाँ' 'अत्र-तत्र-सर्वत्र' हमारी अल्मारी और समालोचना आदि स्तम्भों के माध्यम से हिन्दी भाषा में संस्कृत का

अभूतपूर्व योगदान रेखांकित किया है। आपके नैक वैविध्यपूर्ण लेख एवं सामयिक रचनाएं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। यथा– समालोचक में काक पद, पृथ्वीराजविजयमहाकाव्य, पाणिनी की कविता, संस्कृत की टिप्पणी, संस्कृत में अकबर का चरित्र, सिंहलद्वीप में कालिदास का समाधिस्थल, भाषा की भाषा, शोभना खलु पाणिनिसूत्रस्थकृति तथा राजाओं की चिट्ठियाँ प्रमुख काव्य रचनाएँ हैं। आपने अंग्रेजी भाषा में अनेक शोध-निबन्धों की सर्जना कर अपने बहुभाषाविद् पक्ष को प्रबल किया है।

आपने महाभारत जैसे विशाल ऐतिहासिक ग्रन्थ का आंग्लभाषा में अनुवाद किया है। इसी प्रकार गुलेरी महोदय प्रणीत काशी नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा सूर्य-कुमारी पुस्तक माला के 18 भागों में प्रथम खण्ड और प्रथम भाग प्रकाशित किया गया। इस प्रकार आपकी ऐसी प्रशस्य एवं उल्लेखनीय सेवाओं एवं वैदुष्य को मध्य नजर रखते हुए मठाधीशों एवं ख्यातनाम-मनीषियों ने 'संस्कृत-मार्तण्ड' एवं 'इतिहास-दिवाकर' जैसी उपाधियों से विभूषित किया गया।

'वात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायाः जयमंगलायाः कर्त्ता नामक शीर्षक से वात्स्यायन मुनि के कामसूत्र एवं जयमङ्गला नामक टीका पर सविस्तार विश्लेषण व समीक्षण कर लेखक ने छिपे गूढ रहस्यों का प्रतिपादन किया है। द्रष्टव्य है एक उदाहरण–

'पुनश्च सूक्ष्मतया जयमङ्गलायां विभाव्यमानायां यट्टीकासंस्कर्तुर्यशोधरस्य जीवन-चरित्रविषयकं रोचकमुपाख्यानं वर्णयन्त्य इमाः प्रशस्ताः पुष्पिकाः प्रत्यध्यायसमाप्तावेव स्फुरन्ति। अस्ति च मूलसूत्राणां विभागः प्रकरणेष्वधिकरणेषु चापि यथैवाध्यायिषु। गौरतलब है कि जयपुर की सुविख्यात वेधशाला और ज्योतिष यन्त्रालय के जीर्णोद्धार एवं शोधनकर्म में प्रवृत रहते हुए सन् 1901 में गुलेरीजी ने सम्राट् सिद्धान्त संस्कृत ग्रन्थ अंग्रेजी में अनूदित किया तथा 1897 में जयपुर नगर में नागरी भवन की प्रतिष्ठा कर संस्कृत भाषा का व्यापक प्रचार-प्रसार किया। आज भी उनके द्वारा वेधशाला के यंत्रों के जीर्णोद्धार आदि का जो लोकोपयोगी कार्य किया गया था, उसका सादर उल्लेख जयपुरीय ज्योतिष यन्त्रशाला एवं यंत्रों पर शिलापाट्टिकाओं के रूप में उट्टंकित है। इसलिए

यह कहा जा सकता है कि पंडितप्रवर गुलेरीजी ने केवल साहित्यिक उपवन को न ही संजोया बल्कि ज्योतिष-गणित की शुष्क मरुस्थली को स्वीयज्ञानश्रम से उन्हें वेधशाला एवं अन्य यन्त्रप्रसूनों को विकसित कर अवान्तरकालीन मनीषियों, लेखकों एवं जनसामान्य को एक नव दिशा दी है। यदि जयपुर वेधशाला का निर्माण न होता तो आधुनिक लोगों के लिए वेधज्ञान भला कैसे संभव था। ऐसे बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी पं. चन्द्रधर गुलेरी की असामयिक अर्थात् मात्र 39 वर्ष की भी अल्पायु में ही अर्थात् 12 सितम्बर 1922 को उनकी मृत्यु हो गई। यह अत्यन्त शोक का विषय है कि गुलेरीजी के निधन से संस्कृत जगत् को जो अपूरणीय क्षति हुई है, उसे वाणी रूपी जंजीरों में बाँधना नामुमकिन है। राजस्थान के संस्कृत-साहित्य में उनका अवदान स्वर्णाक्षरों में वर्ण्य है। राजस्थान संस्कृत-अकादमी ने संस्कृत-भास्कर देवर्षि कलानाथ जी शास्त्री के संपादकत्व में श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जन्मशताब्दी-विशेषाङ्कः'' जनवरी-मार्च 1983, वर्ष-8 अङ्क 1 में प्रकाशित किया गया था। ऐसे विचक्षण कवि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर राजस्थान के विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा शोधकार्य भी किया जा रहा है।

पं. छत्रधर शर्मा

इस अध्याय में राजस्थानीय राजाओं के शौर्य एवं ऐश्वर्य पर इतिहासपरक राजभूतिकाव्यम् रचा। 11 सर्गों में टोंडा प्रदेश के प्रमुख शासक कुम्भाराय के जीवन चरित पर महाकाव्य का सर्जन किया साथ ही कई ऐतिहासिक रचनाओं के रचनाकार रहे।

राजस्थान प्रान्त की संस्कत मनीषा का इतिहास आज सर्वत्र प्रशस्य महिमामण्डित व समादरणीय है। यह तथ्य स्वयंसिद्ध है कि विशिष्ट प्रतिभा न केवल शहरी क्षेत्रों में प्रत्युत् ग्राम, ढाणी व गिरिकन्दराओं में विशेष रूप से देखने को मिलती है। ऐसे ही परिवेश एवं ग्राम्य अंचल के छोटे से स्थान अर्थात् जयपुर नगर के दक्षिणपूर्व भाग में ''टोडा'' नामक रम्य ग्राम में संस्कृत के चूड़ान्त व शिखर मनीषी पं. छत्रधर शर्मा का जन्म सन् 1914 में ज्योतिष के प्रख्यात् विद्वान् पं. श्री मथुरानाथ जी के यहाँ हुआ।

देववाणी का अध्ययन व वैदुष्य आपकी पारिवारिक चिरस्थायिनी संपदा थी। तत्कालीन जयपुर राज्य के ज्योतिष रत्नों में आपके पिताश्री का भी प्रमुख स्थान था। आपने अपना अध्ययनक्रम भी अपने पिताश्री के संरक्षत्व में जयपुर में ही किया। अतः कुछ समय तक जयपुर की संस्कृत पाठशाला में अध्ययन करने के पश्चात् आप संस्कृत के विशेष अध्ययन हेतु वाराणसी प्रस्थान कर गये। वहाँ रहते हुए ही आपने चर्चित 'क्विंस कालेज' से व्याकरण-शास्त्री परीक्षा सन् 1933 में, साहित्याचार्य परीक्षा 1936 में तथा अपने पिताश्री की ज्योतिष सम्पदा को अक्षुण्ण रखने की दृष्टि से सन् 1940 में 'ज्योतिषाचार्य' जैसी परीक्षाएं उत्तीर्ण कर अपने विशिष्ट ज्ञान का डंका बजाया।

इसके पश्चात् आप पुनः अपनी जन्मस्थली लौट आए। आपके विशिष्ट वैदुष्य को मध्य नजर रखते हुए सीकर नगरीय माध्यमिक विद्यालय में संस्कृताध्यापक पद पर नियुक्त किये गये। यहाँ शिष्य-मण्डली में अपना ज्ञानामृत बाँटते हुए संस्कृत में मौलिक सर्जना करते हुए लगभग 8 वर्षों तक उल्लेखनीय कार्य किया। दुर्भाग्य का विषय यह रहा कि माँ लक्ष्मी जी की कृपा न होने के कारण आपकी सभी रचनाएं ज्यों की त्यों रहीं एवं

प्रकाशन की प्रतीक्षा करती रहीं, क्योंकि लक्ष्मीजी जो नाराज थी। उल्लेखनीय है कि आपकी प्रखर प्रतिभा का आकलन बड़े-बड़े मनीषियों एवं राजविभाग को हुआ। अतः इसके पश्चात् 1952 से लगभग 1961 तक आप राजस्थान सरकार के पुरातत्त्व-विभाग में विशेष शोध कार्य कर सबको अपने शोध क्षेत्र से चमत्कृत कर अपनी बहुमुखी प्रतिभाप्रभा का बखूबी परिचय दिया। परन्तु देखिए नियति का खेल कि आप दिनों-दिन शारीरिक पीड़ा से घिरने लगे। अन्ततोगत्वा आपको उक्त विभाग से लगभग 9 वर्ष पश्चात् स्वयं को ही इस शारीरिक पीड़ा के कारण त्याग-पत्र देना पड़ा। उसके पश्चात् आप अपने मूलग्राम 'टोडा' में आकर रहने लगे। प्रथम परिचय मात्र से ही सम्पर्क में आए लोग, आपकी विनम्रता, वाक्पटुता, शालीनता एवं विद्वता से कायल थे। आपने अपने विद्यार्थी काल से लेकर जीवन के अन्तिम पड़ाव तक संस्कृत एवं हिन्दी में रचना करते रहे। इन्हीं सृजित रचनाओं की श्रेणी में 8 संस्कृत एवं लगभग 28 हिन्दी में प्रणीत हैं। इसके अतिरिक्त भी विभिन्न सामयिक एवं परिस्थितिवश लिखी रचनाएं वर्ण्य हैं।

कवि के संदर्भ में ऐसे अनेक प्रमाण मिले हैं, जिससे यह पक्ष स्वतः उभरकर सामने आता है कि कवि ने राज्यसेवा का परित्याग करने के पश्चात् आजीविका संचालन हेतु 'कर्मकाण्ड' को अपना माध्यम बनाकर कुलपरम्परानुसार विभिन्न यज्ञों में आचार्य के रूप में तथा विवाह, व्रतोद्यापनादि विविध कार्यक्रमों से अपनी गहरी पैठ कायम कर क्षेत्र को अपने वैविध्य के कारण उपकृत किया।

आप एक कुशल एवं सक्रिय 'शोधकर्ता' के रूप में भी ख्यातनाम रहे हैं। पुरातत्त्वविभाग में सेवारत रहते हुए ही इतिहास में विशेष रुचि होने के कारण आपने 13 शोधप्रबन्धों की रचनाएं कीं। आप न केवल इतिहासवेत्ता ही बल्कि एक प्रमुख 'ज्योतिर्विद' के रूप में भी जाने जाते रहे हैं। जून, 1949 की एक घटना के अनुसार वाराणसी में आयोजित ज्योतिष-सम्मेलन में पृथिव्या गोलाकृतिर्नास्ति, न च भवितुं शक्नोति' (पृथ्वी गोल नहीं है और न ही हो सकती है) उक्त शोधपत्र के माध्यम से उपस्थित विद्वानों को आश्चर्य में डाल दिया था। आप भू-जल, जलवायु एवं प्रकृति सम्बन्धी पक्षों पर जो भविष्यवाणी किया करते थे, वे पूर्णरूपेण सत्य सिद्ध हुईं। इस

बिन्दु का अकाट्य प्रमाण वहाँ के ग्रामीण दिया करते थे, ऐसी जनश्रुति रही है। आपके समग्र पक्षों का सम्यक् आकलन कर सन् 1966 में राज्यसम्मान से सम्मानित किया गया।

गौरतलब है कि स्वातन्त्र्योत्तर काल में आपने सुरवाणी की भरपूर सेवा की, जिसे शब्दों में व्याख्यायित करना नामुमकिन है। हा हन्त! ऐसे बहुमुखी प्रतिभा के धनी एवं संस्कृत जगत् के देदीप्यमान हीरक पं. छत्रधर शर्मा का शारीरिक पीड़ा के कारण सन् 1975 में निधन हो गया। आपके निधन से संस्कृत-जगत् को अपूरणीय क्षति हुई है जिसे वाक्यों की मणिमाला में समेटना असंभव है।

कृतित्व पक्ष :–

कविवन्द्य पं. छत्रधर शर्मा का कृतित्व पक्ष काफी व्यापक रहा है। कवि ने अपने काव्यों में विशेष रूप से सर्वत्र वैदर्भी रीति का प्रयोग करते हुए प्रसाद एवं माधुर्य की लालित्यमयी शैली में रचनाएं की हैं साथ ही शब्द एवं अर्थालंकारों में कवि पारंगत है। कवि के पद्यों के अध्ययन से 'अर्थगौरव' की महनीय छटा भी दृष्टिगोचर होती है। देववाणी में आपके अधोलिखित ग्रन्थ ग्रंथित हैं, जो काव्य रसिकों के कण्ठहार सिद्ध हुए हैं। यथा–

(1) राजभूतिः काव्यम् (2) अम्बासागरवर्णनम्

(3) कुम्भरायचरितमहाकाव्यम् (4) रायसिंहदिग्विजयमहाकाव्यम्

(5) वाराहीस्तवनम् (6) टोण्डांगनाशौर्यगीतिः

(7) मण्डलविधानम् एवं (8) वितानग्रन्थः।

1. राजभूतिः काव्यम् :–

इस रचना में कवि ने तत्कालीन राजनीति से ओतप्रोत राजस्थानीय राजाओं के शौर्य एवं ऐश्वर्य का अतिशयोक्तिपूर्ण चित्रांकन किया है। राजा प्रजा के कल्याण, खुशहाली एवं अभिवृद्धि की कामना किया करते थे। द्रष्टव्य है एक झाँकी–

''राजाधिराजोऽवरजानमात्यान्,

एकः प्रतारी प्रजयोल्लसन्तुम्

यशोऽधिगन्तुं भ्रमरीव लोलुपा,

मनोऽभिलाषाऽस्य नु वन्दनीया।'' (राजभूतिः 3/9)

इसी रचना में कवि ने अपनी जन्मस्थली 'टोडा' नामक क्षेत्र का मनोहारी वर्णन, प्रजा एवं राजा का सम्बन्ध बड़ी ही सरसता, सरलता एवं लालित्यमयी शैली में किया है। जैसा कि कवि ने लिखा है–

''प्रजानुरागोद्धृतकण्टकैकम्,

अकारणत्वं समवाप सद्यः।

दुःखं त्रिधा नृत्यदिव प्रयातं

लोकैः सुनन्द्यं किमुताबभूव॥'' (राजभूतिः 12/7)

इस प्रकार कहा जा सकता है कि उक्त रचना के माध्यम से कवि ने राजा एवं प्रजा के मधुर सम्बन्ध प्रजा की प्रहरीवत् रक्षा एवं अवसर आने पर राजाओं द्वारा अपने शौर्य का परिचय देना जैसे लोकोपयोगी पक्षों पर कवि ने अपनी समृद्धतम लेखनी चलाई है।

2. अम्बासागर-वर्णनम् :–

इस रचना में दो सौ पद्यों के माध्यम से कवि ने लघुकाव्य मुक्तक रूप में रचकर अम्बासागर नामक तालाब का रमणीय वर्णन उपनिबद्ध किया है। जैसा कि कवि ने लिखा है–

''कामारविन्दमकरन्दमरन्दबिन्दून्

अध्यास्य लोलसुधिया लवते वसन्तः।

चेतांसि लोकयुवकेषु तथैव पद्म,

पद्माननासु कुरुते नवपीडनत्वम्॥''

षट्पत्प्रपत्तिरतुलं कमनीयतायाः

कार्ष्ण्येङ्कुरं वितनुते विपरीतभावान्।

चेतोगतानिह परं मदनार्दितानां

कामं प्रकर्षति बलाद् बलवत्तदानीम्।

3. कुम्भरायचरितमहाकाव्यम् :–

11 सर्गात्मक इस महाकाव्य में कवि ने टोण्डाप्रदेश के प्रमुख शासक कुम्भराय का जीवन चरित वीररस से ओतप्रोत शैली में गुम्फित किया है। कवि ने कुम्भराय के विभिन्न पक्षों पर वर्णन करते हुए ही विशेष रूप से कुम्भराय की दिग्विजय यात्रा का हृदयस्पर्शी वर्णन किया है। 'वसन्ततिलका' छन्द में उदाहरणस्वरूप दो पद्य दिये जा रहे हैं–

''कुम्भेन पूर्णजलवद्रिपुसुन्दरीणाम्,
अस्राण्यपेक्ष्य जगतीहमुदेन जह्ने।
प्रायो विनेयनवराज्यकृताधिकारा–
दिच्छामनस्तदधिकं न्वपि कामकामम्।।'' (कुम्भरायचरितम् 11.59)

कुम्भोद्भवेन मुनिना जलधिर्निपीतो,
राज्ञा ह्यनेन पुनरत्र विलंघ्य तं च।
कीर्तेर्निशाकरद्युतेर्भासावदातां
पौर्णं चकार दिवसं कमनध्वजेव (कुम्भरायचरितम् 4.37)

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि इसमें टोण्डाप्रदेश के नायक एवं प्रजापालक कुशल राजा कुम्भराय का जीवन-चरित का वर्णन कर कवि ने युवा-समाज को कुम्भराय के चरित की तरह अपना पवित्र एवं उज्ज्वल भविष्य-निर्माण का महनीय संदेश दिया है।

4. रायसिंहदिग्विजयमहाकाव्यम् :–

कविवर पण्डित श्री छत्रधर जी ने 23 सर्गों में विभक्त वीर रस प्रधानपूर्ण शैली में इस रचना में रायसिंह की विजय यात्रा का मनोहारी वर्णन उपनिबद्ध किया है। रसाभिव्यञ्जन के साथ ही कवि ने किरातार्जुनीयम् का भी मानो अनुसरण किया हो। यथा–

''न राजराजो विगुणो विषेहे,
गुणानुबन्धं धनुराततान।

गुणोज्झितानामतिकारभाजां

यावद्रिपूणां न महो बबन्ध।। (रायसिंहदिग्विजयम् 8.4)

इस महाकाव्य में कवि ने सर्वत्र प्रवाहमयी भाषा का प्रयोग करते हुए अपनी पाण्डित्यपूर्ण मौलिक सर्जना की है। यथा–

''विविधविधवधूटीपारवश्यं पराणाम्,
इपुमवनिवितानप्रांचले रायसिंहः।
ददति नियतिदोषाद् दूषयन्तो दिगन्तान्,
अवलिभुवनविभुताभूतिभिरुल्लसन् यः।।''

5. वाराहीस्तवनम् :–

इस रचना में कवि ने ललित, प्रांजल एवं प्रवाहमयी भाषा में वाराहीदेवी का सटीक वर्णन किया है। पद-पद पर वर्णों की सरसता वर्ण्य है–

''मातः! समस्तजगतामभिनन्दनीयेः,
लोकाभिरामवपुषोल्लसदेकहासे।
कासारकाशकमनच्छविबन्धुरेऽस्मिन्,
टोण्डाभुवौ भसितभूतिशिवाभिवन्द्या।''

अलङ्कारों का यथास्थान प्रयोग करने में कवि पारखी थे। द्रष्टव्य है उपमा अलङ्कार का एक निदर्शन–

''आलम्बमेव करयोरिव किं तवाम्ब!
प्रायो ह्यवेत्य कवयः कवयन्ति कामम्।
काव्यानि कालकलने मति धेहि भूयो,
भूयो धियं धरणिमण्डलमण्डने हे।।''

(वाराहीस्तनम् 74)

इस प्रकार उक्त रचना में कवि ने माँ देवी की हृदयस्पर्शी स्तुति कर लोककल्याण की मंगलकामना अभिव्यक्त की है।

6. टोण्डांगनाशौर्यगीतिः –

इस रचना में कवि ने टोण्डाप्रदेश वासिनी नामांगनाओं के शौर्यपूर्ण तथा

लालित्यमयी भाषा के साथ ही वीर एवं श्रृंगार का एकत्र संगमस्थल प्राप्य है। इस गीति रचना में 150 पद्यों के माध्यम से छन्द एवं अलंकारों का यथास्थान प्रयोग किया है। यथा–

''राजीवपत्त्रनयना नयमेत्य नव्यं,
भव्यं चकार महदत्र चिराय चित्रम्।
ता लीलया सुमधुरं वचनं विवबुः
गोपायिताः स्वहृदयांचलिके कुचालम्।।''

''हा हा हतः कुहनयो मृगरूपभाजाम्
अक्षैर्दिशामधिपतिर्यवनाधिराजः।
घण्टाघनादृसविशेषमुदीक्ष्यमाणः,
किं कैतवं भजति कालविधौ वधूनाम्।।''

7. मण्डलविधानम् –

पण्डितवर श्री छत्रधर शर्मा की 'मण्डलविधानम्' नामक रचना राजनीति नियमों से परिपूरित है। इस रचना के माध्यम से यह स्वतः सुस्पष्ट हो जाता है कि कवि पर विशेष राजनीति का प्रभाव पड़ा है। इस रचना में कवि ने आधुनिक परम्परा पर आधारित 12 राजमण्डलीय चिन्तन का वैज्ञानिक दृष्टि से उल्लेख किया गया है। कवि ने वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी सफल राजनीति संचालनार्थ 12 राजमण्डलों का होना आवश्यक सिद्ध किया है।

''मित्रमित्रं च तुष्ट्वाऽथ परमित्रेभ्योऽपि वारयेत्।
तदा षट्कं विजानीयाद् दृढ़ं जातं बलाबलम्।।
अरेमित्रैः स्वमित्रैः यं कारयतीह पराभवम्।
सः परान्नतु प्राप्नोति कादाचित्कं पराभवम्।।''

उक्त रचना से यह स्वयंसिद्ध है कि कवि स्वयं भी कुशल राजनीतिज्ञ रहे होंगे।

8. वितानग्रन्थः –

इस रचना में कवि ने ज्योतिष के दुरुह पक्षों की उलझी गुत्थियों को सुलझाने का

सम्यक् प्रयास किया है। कवि ने यह रचना सात गुच्छियों में वर्णित कर प्रथम गुच्छक में 22 ज्योतिष सिद्धान्तों, द्वितीय में जातकविचार, तृतीय में विशेषयोग, चतुर्थगुच्छक में राजयोग, पंचम में यात्राविचार और यात्रायोग षष्ठ में शकुनविचार एवं सप्तम गुच्छक में ज्योतिष के रमल सिद्धान्तों को वर्णित किया गया है। उक्त रचना मानव के हितों को सर्वोपरि मानते हुए लिखी गई है।

इस ग्रन्थ का वैशिष्ट्य कवि प्रणीत इस पद्य से स्वयं परिलक्षित हो जाता है–

''श्री वादिराजस्य गुणोत्कराणां
महाप्रभावादधिगत्य ज्योतिषम्।
वितानसंज्ञेऽस्मिन् ग्रन्थराजे
रहस्यरूपेण हि गुम्फयामि॥''

(वितानम् 1.4)

इस प्रकार उपर्युक्त रचनाओं के समीक्षण से यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने 'स्व' की अपेक्षा 'पर' को सर्वोपरि मानते हुए अपनी रचनाओं के माध्यम से आधुनिक समाज को नवसंदेश देकर प्राणियों का मार्ग-प्रशस्त करने का पूर्ण प्रयास किया है। निःसंदेह अपनी इन लोकोपयोगी रचनाओं से आधुनिक-समाज उपकृत हो सकेगा। बशर्ते कि इन ग्रंथों के प्रकाशन का भी कोई बीड़ा उठाए।

पं. श्री जगदीशचन्द्राचार्य

इस अध्याय में संगीत की धुन के धनी व जाने माने संगीतकार जगदीशचन्द्राचार्य ने एकद्वित्रीताल, ध्रुपद, छत्रपाद पर लिखी कई गीतियां व संगीत से सजी-धजी संगीत लहरी की रचना कर संस्कृत में संगीत साधना को अमर किया।

राजस्थान प्रान्त में विगत एक लम्बे अरसे से दैवीवाक् गीर्वाणवाणी सुरभारती की एकान्त साधना में रत पं. श्री जगदीशचन्द्र प्राणशङ्कराचार्य के अभिधान से संस्कृत काव्य-सर्जन करने वाले सुधीप्रवर आचार्य जी का जन्म सौराष्ट्र (गुजरात) प्रदेश के 'हलवद' नामक ग्राम में 12 जुलाई 1911 में हुआ तथा सन् 1927 में राजकोट (गुजरात) से 10 वीं कक्षा उत्कृष्ट अङ्कों से उत्तीर्ण की। विमल वाणी से विमलित पं. श्री जगदीश चन्द्र आचार्य जी की हार्दिक वाञ्छा उच्च शिक्षा प्राप्ति की थी, किन्तु हाय गरीबी....। आपने चित्रकला में परीक्षा उत्तीर्ण की। अनन्तर 7 अगस्त, 1928 को आपने जोधपुर नगर में शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालय में चित्रकलाध्यापक के रूप में सेवारम्भ की।

सतत उद्यमी के रूप में रहते हुए आपने सन् 1929 में रेल्वे-विभाग में नियुक्ति प्राप्त की। तत्पश्चात् राजपूताना माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा आयोजित 'इन्टरमीडिएट' परीक्षा संस्कृत में विशेष योग्यता के साथ उत्तीर्ण करने के पश्चात् सन् 1935 में 'एकाउन्टेन्सी' नामक परीक्षा उत्तीर्ण की। शैक्षिक सफर की इस शृंखला में ही जसवन्त महाविद्यालय से 1936 से 1938 तक बी.ए. परीक्षा संस्कृत विषय में सर्वप्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण होने पर आपको पुरस्कृत किया गया। अकादमिक क्षेत्र में आपकी ज्ञान-पिपासा उक्त शिक्षा से सन्तुष्ट न हो सकी। एतदर्थ 1949 में आपने एम.ए. परीक्षा उत्तीर्ण कर द्वितीय स्थान पर रहने के कारण पुरस्कृत किये गये। तदनन्तर 1959 में विधिस्नातक अर्थात् एल.एल.बी. परीक्षा उत्तीर्ण की। नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के धनी पं. श्री जगदीशचन्द्र जी आचार्य में काव्य-स्फुरण का प्रमाण मात्र 17-18 वर्ष की अल्पावस्था में ही देखने को मिल जाता है। इसका जीता-जागता उदाहरण है– 1928 में

कविकुलमुकुटायमान कालिदास विरचित रघुवंशमहाकाव्य के 8 वें सर्ग में 'अज-विलाप' की तर्ज पर ही आपने 'विरहिणी' नामक खण्डकाव्य की मौलिक सर्जना कर अपनी विलक्षण मेधा का अचूक परिचय दिया। यह खण्डकाव्य अहमदाबाद से प्रकाशित ''साम्मनस्यम्'' नामक पत्रिका में प्रकाशित हो चुका है।

आपने लगभग 29 वर्ष की अवस्था में नैक स्तरीय एवं सामयिक निबन्धों की सर्जना की तथा इसी दौरान विभिन्न लयपरक गेय गीतिकाव्यों की रचना की, जो कि जोधपुर एवं जयपुर के आकाशवाणी केन्द्रों से प्रसारित भी किये गये।

राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन, जयपुर द्वारा 1952 में आयोजित वन्द्यकवि कालिदासकृत 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक का सफल अभिनय आपके निर्देशन में किया गया साथ ही इसमें गेय पद्यों की सर्जना भी आप द्वारा ही की गई, जिसे समारोह में उपस्थित सभी लोगों ने सराहा। इसके पश्चात् आपने विभिन्न समारोहों में अपने ज्ञानालोक से कार्यक्रम को पुंजित किया। आपको साहित्य अकादमी, दिल्ली द्वारा प्रकाशित 'संस्कृत-प्रतिभा' में 'प्रियदर्शनोत्सुक्त' नामक गीतिरचना को लक्ष्य कर पुरस्कृत किया गया। इसी प्रकार आपके व्यापक मौलिक सर्जनात्मक क्षेत्र को मध्य नजर रखते हुए 1967-68 में राजस्थान सरकार द्वारा सम्मानित किया गया। निःसंदेह आप लब्धास्पद विद्वान्, कर्मयोगी, सुधीजन-प्रिय जीवन्त व्यक्तित्व के वाचक हैं। आपका सौजन्य एवं वैदुष्य मिलकर सुगन्ध संयोग की सृष्टि करता है। उनकी लोकाराधन पटुता वन्दनीय है, अभिवन्दनीय है।

आपके कृतित्व क्षेत्र को लेखनी में समेटना तो टेड़ी खीर है, किन्तु फिर भी हम शब्द रूपी मणियों में मुक्ताहार बनाने का सम्यक् प्रयास कर रहे हैं। आपकी निम्न रचनाएं वर्ण्य हैं– स्तोत्ररत्नसमुच्चयः, पद्मपरागः, सुधन्वाख्यानम्, संगीतलहरी, विरहिणी, मन्दाकिनीमाधुरी, मनोबोधः, वासुदेवचरितम्, गोविन्दगीताञ्जलिः, प्रभापञ्चमी, उपेन्द्रस्तवः, ऋतुविलासः, मकरन्दिका, सत्यमेव जयते एवं अमरभारती। यमकालङ्कार की छटा से ओतप्रोत एवं 103 पद्यों में द्रुतविलम्बित छन्दोबद्ध रचना से निबद्ध आपने 'वासुदेवचरितम्' नामक काव्य की सर्जना की। मूलतः इस काव्य में भगवान् श्रीकृष्ण

का जीवन-वृत्तान्त एवं गीतोपदेश को संक्षेप रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह रचना राजस्थान संस्कृत अकादमी जयपुर से प्रकाशित है। उक्त रचना पर ही आपको राजस्थान संस्कृत अकादमी के पद्यात्मक क्षेत्र का सर्वोच्च 'माघ' पुरस्कार से 15 अप्रैल 1983 में प्राप्त हुआ।

इससे पूर्व आप 1966 में रेल्वे सेवा से सेवानिवृत्त हुए। इसके पश्चात् आप निरन्तर साहित्य साधना में तल्लीन रहे। इसी प्रकार स्वामी समर्थ रामदास द्वारा 'मराठी' भाषा में उपनिबद्ध 'मनाचे श्लोकाः' का 1986 में पद्यानुवाद किया। राजस्थान सरकार द्वारा संस्कृत दिवस की पावन वेला पर आपके विशिष्ट वैदुष्य एवं देववाणी के सजग प्रहरी के नाते सन् 1983 में सम्मानित किये गये। इसी प्रकार 1984 में राजस्थान सरकार द्वारा भी आपको पारितोषिक प्रदान किया गया। सोला (गुजरात) एवं अखिल भारतीय वेद-वेदांग सम्मेलन एवं जोधपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग द्वारा संस्कृत-सम्मेलन में आपको सम्मानित किया गया। गौरव का विषय है कि आजकल जोधपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभागाध्यक्ष के रूप में लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् एवं विभिन्न कार्यक्रमों के सफल आयोजक डॉ. श्रीकृष्ण शर्मा अपनी उल्लेखनीय सेवाएं दे रहे हैं। इसके अतिरिक्त भी आप विभिन्न संस्थाओं, अकादमियों, प्रशासन एवं अन्य स्थानों से पुरस्कृत एवं सम्मानित किये गये। वार्धक्य अवस्था को प्राप्त भी आपने तारुण्यवत् रहकर गीर्वाणगी की भरपूर प्रशस्य सेवा की है।

सर्जनात्मक क्षेत्र में 'गोविन्दगीताञ्जलिः' नामक रचना में आपने महाकवि जयदेवकृत 'गीतगोविन्द' शैली से प्रभावित होकर उसी शैली ताल-लयाश्रित अष्टपदी की तर्ज पर उक्त रचना का सूत्रपात किया। शृंखला की इसी कड़ी में बाणभट्टकृत 'कादम्बरी' शैली में सृजित 'मकरन्दिका' नामक रचना का प्रणयन 1984 में किया, जो कि आपके तीन वर्षों की सतत-साधना का प्रतिफल है। उक्त रचना का कथ्य नायक चित्रकेतु और नायिका मकरन्दिका की प्रणयकथा है। इस चम्पूकाव्य के पूर्व भाग में नायक-नायिका का विवाह और राज्याभिषेक का वर्णन है। उत्तरार्द्ध में नायक अपने पुत्र का राज्याभिषेक करके वानप्रस्थ ग्रहण से ही इसमें शृंगार मुख्य रस है। इसी रचना पर आपके प्रौढ़

पाण्डित्य को मध्य नजर रखते हुए 'उत्तर-प्रदेश संस्कृत अकादमी' द्वारा दस हजार रुपये एवं प्रशस्ति-पत्र प्रदान कर आपको पुरस्कृत किया गया। वैदर्भी एवं पांचाली रीति से निबद्ध इस रचना के समस्त पात्र काल्पनिक हैं। यह रचना 1985 में प्रकाशित हुई।

'संगीत-लहरी' नामक रचना में 48 गीतों के माध्यम से मानव-जाति को विभिन्न पक्षों पर महनीय संदेश दिया है। इस ग्रन्थ में कवि ने प्रमुख रूप से एकताल, द्विताल, त्रिताल, ध्रुपद चौताला एवं झपताल आदि गीति रचनाएँ हैं। साथ ही 'ग़ज़ल' एवं 'गुजराती गरबा' इत्यादि का भी वर्णन इस रचना में देखने को मिलेगा। कवि ने इस रचना के माध्यम से आत्मा का परमात्मा के साथ मिलन, परमात्मा के विविध रूपों का चित्रण, साधनोत्कण्ठा, विरहवेदना भगवद्भक्ति एवं जीवन की क्षणभंगुरता आदि का मार्मिक विश्लेषण किया गया है। भैरव राग त्रिताल में निबद्ध एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

''चल वामे चल चञ्चले!
कुंकुमरागविभूषित भाले,
चलदधरीकृत मुदितमराले
प्रियसुखमनुभव मञ्जुले।।''चल.।।

कवि का अविद्यावर्णन गेय एवं वर्ण्य है। यथा–

''मायातिगहना विश्वनियन्तु, विश्वनियन्तु।
ब्रह्ममरपति शंकरानलयमधनदसुरा
मोहितास्तस्यमहो कमलेष्विव मधुपाः
मोहकरा ननु माया ननु माया ननु माया।।''माया

इसी प्रकार जीवन-क्षणभंगुरता की एक बानगी देखिए–

''क्षणभुंगरजीवनकलिकेयं, श्व उषसि विकसेदथवा नेयम्।
भज यदुवरमधुसूदनमेनं, जप जगदीशं पदगतशरणम्।।''

राधिका के मुखमाधुर्य को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाकर भैरवी राग 'ग़ज़ल' में कवि का वर्णन बड़ा ही चित्ताकर्षक है–

''सुरेशं सच्चिदानन्दं यशोदानन्दनं वन्दे!
परेशं गोपिकाधारं सभावविश्वभर्तारम्।

लभेताशुप्रसादात्स प्रकामं सत्पदं विष्णोः॥ सुरेश.॥''

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कविप्रवर पं. जगदीश चन्द्राचार्य जयदेव के फैन थे। अतः इन्होंने भी 'जयगोविन्द' की तर्ज पर कोमलकान्तपदावली में विविधरागतालादि में संगीतबद्धगीतात्मक रचना 'संगीत-लहरी' शीर्षक से की। जिसका जिक्र अभी हम उद्धरण सहित ऊपर कर ही चुके हैं। आपकी अन्य सुविख्यात रचनाओं में 'मन्दाकिनी-माधुरी' नामक रचना में 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द में कवि ने गङ्गा मैया का वन्दन किया है। कवि ने 'सर्वजनसुखाय सर्वजनहिताय' के मूलमन्त्र को आत्मसात् कर देवों एवं मानवों की वन्द्या गङ्गा मैया को लोककल्याणार्थ ही पृथ्वी पर अवतरित होना पड़ा। जैसा कि कवि कहता है–

''दिव्या देवपुरीकृताधिवसतिः कल्लोलकेलिप्रिया,
कारुण्याम्बुधिरीश्वरी मनुतनूजन्मानुकम्पा परा।
स्वर्गात्तर्णमवातरद्भुवि सुरैर्वन्द्या जगच्छ्रेयसे,
मन्दोत्तुंग तरंगभंगतटिनी मन्दाकिनी पातु माम्॥''

कवि की रचना में छन्दोमाधुर्य पदों का लालित्य एवं भाव की सघनता पद-पद पर परिलक्षित होती है। यथा–

''कल्याणी कुमुदेशकुन्दधवला धाराधरोल्लासिनी,
सर्वांगस्थचिरा शिवामृतमयी नीलाम्बरश्रीयुता।
तन्वन्तः करणा सलीलसलिला स्वर्गापगा पावनी,
मन्दोत्तुं गततरंगभंगतटिनी मन्दाकिनी पातु माम्॥''

इसमें निर्गुणब्रह्म प्राप्ति के लिए सगुणोपासना को आवश्यक सिद्ध किया गया है। अद्वैतसिद्धि के लिए द्वैत की आवश्यकता का प्रतिपादन करते हुए कवि कहता है–

''कुञ्जे कोकिलकूजितेऽत्र रमते वृन्दावने पावने,
गोपीशव्रजसुन्दरीपरिवृता रासेश्वरी राधिका।
लीलामुग्धजगत्पतेर्भगवतः पादत्विषां यच्छवि-
स्त्वं तद्रूपमयीति तत्त्वमसिना द्वैतस्य पुष्टिः कृता॥''

आपने 1985 में 'सत्यमेव जयते' नामक नाटक की सर्जना की, जो मूलतः गोस्वामी हरिराय विरचित ''जरासन्धवध' महाकाव्य पर आधारित है। भारत की सांस्कृतिक एवं अखण्डता को लक्ष्य कर महाकवि कालिदास विरचित मेघदूत के मन्दाक्रान्ता छन्द की तरह ही आपने 'अमरभारती' नामक गीतिकाव्य के 158 पद्यों में कोई पत्नी अपने प्रियतम को मद्रास संदेश भेजती है। एक दिन हंस सुबह मानसरोवर से उड़ता हुआ मसूरी आता है। इस रचना में समूचे भारतवर्ष में दर्शनार्थ हंस को प्रेरित करने एवं पति सन्देश लाने की प्रार्थना को प्रमुखता से उभारा है। व्याकरण में आप बहुप्रवीण हैं। यथा–

'सर्जन्तः श्रुतिमञ्जुनादलहरीसलापनैरस्फुटैः'

उपर्युक्त 18 वर्णीय पद्य में आरम्भिक 'सर्जन्तः' शब्द के स्थान पर 'सृजन्तः' शब्द उचित सिद्ध किया है। संस्कृत पत्रकारिता के क्षेत्र में भी आपका अवदान प्रशस्य है। वाराणसी से प्रकाशित 'सूर्योदयः' एवं 'सुप्रभात' नामक पत्रों के साथ ही अन्य पत्र-पत्रिकाओं में भी आपके आलेख एवं रचनाओं का प्रकाशन होता रहा है।

इस प्रकार संस्कृत-जगत् के ख्यातनाम सुधीप्रवर पं. जगदीशचन्द्र जी आचार्य का राजस्थान के संस्कृत-साहित्य में उल्लेखनीय एवं प्रशंसनीय अवदान रहा है। संस्कृत-जगत् सदैव आपका चिर-ऋणी रहेगा।

पं. श्री द्विजेन्द्रलाल शर्मा 'पुरकायस्थ'

इस अध्याय में पौराणिक आख्यान कच्छ और देवयानी पर आधारित महीमहम् महाकाव्य की रचना की तथा पौराणिक आख्यान मेघदूत की यक्षिणी पर आधारित वियोगदशा का अपना महाकाव्य में वर्णन किया।

राजस्थान के संस्कृत साहित्य को अपने प्रखर वैदुष्य के कारण महिमामण्डित करने वाले मनीषियों में प्रेममार्ग कविवर पं. श्री द्विजेन्द्रलाल शर्मा 'पुरकायस्थ' का जन्म बंगलादेश में सिलहट (श्रीहट्ट) नामक नगर में श्री दुलालचन्द्र पुरकायस्थ के पुत्ररत्न रूप में 9 मार्च, 1917 को हुआ। आपके पिताश्री दुलालचन्द्र जी स्वयं 'आशुकवि' के रूप में ख्यातनाम रहे हैं। शैक्षिक जगत् में आपने ढाका कलकत्ता विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त कर कलकत्ता से ही 'काव्यतीर्थ' नामक परीक्षा उत्तीर्ण कर कीर्तिमान स्थापित किया।

आपने नैक वर्षों तक सुविख्यात महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर में दर्शनाध्यापक पद पर कार्य करते हुए अपने रचना-कौशल का अमिट परिचय दिया। अनन्तर भीनमाल (जालौर) महाविद्यालय के प्राचार्य पद से सेवानिवृत्ति प्राप्त कर अपरा काशी गुलाबी नगरी (जयपुर) में रहते हुए भरपूर साहित्य-साधना में व्यस्त हो गए। उल्लेखनीय है कि 'दर्शन' एवं साहित्य विषय पर आपका असाधारण अधिकार था।

सादा जीवन एवं उच्च विचार के प्रबल पक्षधर पं. द्विजेन्द्रलाल पुरकायस्थ जी में देशप्रेम, विश्वबन्धुत्व एवं प्रकृति-प्रेम कूट-कूट कर भरा था। आपने दर्शन जैसे गूढ़ रहस्यों का भली-भांति निराकरण किया है।

काव्यात्मक परिचय की दृष्टि से महीमहमहाकाव्यम्, अमेयावधानम्, अलकामिलनं, द्वैतकाव्यं, मैत्रमाधुर्यम् एवं ऋतुकौतुकं नामक प्रमुख खण्डकाव्य परिगणनीय हैं। इसी प्रकार 'दानामृतम्' एवं 'बोध-ग्रह' रचनाएं प्रमुख हैं।

1. महीमहम् –

12 सर्गों में विभक्त इस महाकाव्य में कवि ने नव्य एवं भव्य रूप में कवच और देवयानी के पौराणिक वृत्तान्त को माध्यम बनाकर तथा शुक्राचार्य के पास में संजीवनी

विद्या को प्राप्त करने के लिए आए हुए कच पर शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी के अनुरक्त हो जाने का वर्णन है। कच गुरुकन्या को प्रणय-योग्य नहीं मानता है। इस महाकाव्य में कवि ने प्रेम तत्त्वाभिव्यक्ति का निदर्शन किया है। निःसंदेह प्रेम मानव हृदय की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। परन्तु वासनात्मक प्रेम के कारण बुद्धि (विवेक) पर भी नियंत्रण नहीं रह पाता है। जैसा कि मेघदूत में भी कालिदास ने कहलवाया है–

''प्रेमाऽऽर्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु''

अर्थात् कामार्त व्यक्ति विवेकभ्रष्ट हो जाने के कारण चेतन एवं अचेतन में भी भेद नहीं कर पाता। इस प्रकार कविवर पुरकायस्थ जी ने इस महाकाव्य में मानव पथप्रदर्शन का शाश्वत संदेश दिया है। कवि ने प्रेम के नित्यतत्त्व को अंगीकार करते हुए लिखा है–

''रोगो न शोको न च हान्यलाभौ,
न खेद नैराश्यमिहोप्सितार्थः।
विवेकभातिः प्रवभावबाधा–
च्छेदान्तमान्द्यच्युतमेव प्रेम।।''

(महीमहम् 4-21)

प्रेमतत्त्व का रहस्योद्घाटन करती कामदेव के ज्वर से पीड़ित देवयानी कच को इस प्रकार अपने हृदय के भावों को अभिव्यक्त करती है–

''प्रेमास्पदं न तु कदाप्यथवास्मि किञ्चित्
लक्ष्यार्थसाधनमहं तव प्रेम-पाशे।
काम्यं परं हि नितराममृताख्यमन्त्रं
हत्वाद्य मामिह चिरं विहतां जहासि।।

नौकां यथा दृढ़तनुं तटिनीतरंगे
तावत् समाश्रयति नो तटमेति यावत्
तीरंगतः स विजहात्यवधीरितां तां
सद्यस्तथैव कपट त्यजसीह मां त्वम्।।''

शुक्राचार्य के पास विद्या प्राप्ति हेतु कच आता है। उस दौरान शुक्राचार्य पुत्री

देवयानी एकाकिनी रूप में काफी समय तक साथ खेलती हुई समय बिताती है। चिरकाल तक कच के पास रहने के कारण देवयानी कच पर अनुरक्त हो जाती है। जब कच सञ्जीवनी विद्या प्राप्त कर जब स्वर्ग जाने की इच्छा करता है तभी देवयानी प्रेमाख्यान दृष्टि से कच को भूमण्डल पर ही रखने की प्रार्थना करती है। कच का प्राकृतिक-सुषमा पर अनुराग रहता है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में पति अपनी पत्नी के गर्भावस्था अथवा अन्य कार्यों में हाथ बँटाने की दृष्टि से पति पत्नी के नैक कार्यों को भली-भांति संपादित करता है। देवयानी के जन्म से पूर्व शुक्राचार्य ही गृहकार्यों को सम्पन्न किया करते थे–

''सतर्कितोऽस्याः सुखमुत्तमं हितं-
श्रमाल्पतां चैव विधाय सर्वथा।
सदा सहायो गृहकर्मपुष्कलं,
चकार हृष्टः समवेदनः पतिः॥''

कवि ने पञ्चम सर्ग में मनुष्य को देवताओं एवं राक्षसों से भी विशिष्ट माना है–

स्वतन्त्रयश्च भूयो विवेकाश्रयत्वाद्
समर्थोऽप्यकल्याणमार्गं त्यजन वै।
स्वयं पुण्यनिष्ठः सदाचारमिच्छन्
नरो देवदैत्येभ्य आस्ते विशिष्टः॥

कवि ने नारीहृदय के स्वाभाविक मार्दव को कैसी कठिनाइयों से गुजरना होता है? इसी का वैविध्यपूर्ण विवेचन करते हुए लिखा है–

''नारीह भाति प्रणये मृदुलोल्लसन्ती,
सम्मोहिनी सुचरितैरतुला रसाब्धिः।
मूर्तेन्दुदीप्तिरथवाऽम्बुजकान्तिराधा,
व्यर्थास्ति खण्डितरतिः कुपिताग्निमूर्तिः॥''

उक्त पद्य में नारी प्रेम का बखूबी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। कवि अभिव्यञ्जन शैली में निष्णात हैं। अन्त में हृदयगत सार-सारांश रूप में देवयानी कच से कहती है–

''मर्त्यं हि प्रेमभुवनं प्रणयार्थमग्रयं
लोका वयं च प्रणयादरसूत्रबद्धाः।
सत्यं तु प्रेमरहितो विधृतात्मलक्ष्यः,
स्थातुं क्षणं भुवि पुनः कथमर्हसि त्वम्॥''

अत्यन्त हर्ष का विषय है कि इसी महाकाव्य पर 1996-97 में राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर ने सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य के रूप में ''माघ'' पुरस्कार से पुरस्कृत किया। कवि ने इस रचना में विभिन्न छन्दों के साथ ही ललित पदयोजना, प्रसाद एवं माधुर्य गुणों का सम्यक् प्रयोग तथा समासाल्पता शैली का प्रयोग किया है।

आप प्रख्यात दार्शनिक भी हैं। दर्शनग्रन्थों में मुख्य रूप से आपने (1) अद्वैतामृतसारः (2) विशिष्टाद्वैतसारः एवं (3) द्वैतवेदान्तसारः, इनमें वेदान्तसारसंस्कृत-पद्यों से सुसज्जित है साथ ही इनका सरलार्थ हिन्दी एवं अंग्रेजी भाषा में वर्णित है।

'द्वैतवेदान्तसार' में पञ्चभेदों का उल्लेख करते हुए कहा है–

''भेदो हि जीवादथ चेश्वरस्य जीवस्य वस्तुभ्य इहेश्वरस्य।
वस्तुभ्य एवास्ति च वस्तुभेदो भेदा भवन्तीति हि पञ्चनित्याः॥''

वहीं दूसरी ओर अद्वैतवाद का खण्डन इस प्रकार किया है–

''संसारमिथ्यात्वमतीवहेयमद्वैतवादोक्तमयुक्तमेतत्।
मायेति नाम्नापि सदेववस्तु नासत्कदाप्यस्ति यथा ख पुष्पम्॥''

आपने 'अमेयावधानम्' नामक खण्डकाव्य में भारत की प्राचीन परम्परा की समकालिक स्थिति के वर्णन के साथ ही भारत-महिमा का स्तवन किया है।

इसी प्रकार 'अलकामिलनम्' नामक खण्डकाव्य में दो सर्गों में विभक्त मेघदूत कथा का पर्यवसान है। इस रचना में यक्ष पत्नी की वियोग रूपी मनस्थिति एवं शापान्त में उन दोनों का मिलन वर्णित है। कवि ने विरह के अन्तिम दिवस में यक्षिणी की मनोदशा का जो वर्णन किया है, वह नितरां अभिनन्दनीय एवं हृदयस्पर्शी है–

''आशामुग्धः चकितपुलका शब्दमात्रैर्बभूव।
सोऽयं वेत्ति भ्रमपरतया साग्रहं वीक्षमाणा॥''

आपकी रचना द्वैतकाव्य में षड्-ऋतुओं का क्रमशः मनोहारी वर्णन उपनिबद्ध है। इस रचना में प्रत्येक ऋतु पर पृथक्-पृथक् छन्दों का वैचित्र्य द्रष्टव्य है। इसमें नायक-नायिका की विरहावस्था का क्रम से वर्णन संवाद देखते ही बनता है। ऋतुकौतुकाख्य रचना में 78 पद्यों में ऋतुओं पर आलंकारिक वर्णन है। 'मैत्रमाधुर्य' रचना 5 सर्गों में विभक्त है।

आपके ''शान्तिदर्शन'' नामक रचना में प्रेमभाष्य पर आधारित वर्णन है। कवि के अनुसार शान्ति भी प्रेमजन्य प्रेमात्मा से ही संभव है। द्रष्टव्य है प्रेमभाष्य की एक छटा–

''श्री रामकृष्णावपि खृष्ट एव, मोहम्मदश्चापि जिनश्च बुद्धः।
गान्धी च चैतन्य इतोऽपि सर्वे प्रेमात्मशान्तिं समुपादिशन्ति॥''

कवि ने लोकाधारशक्ति को ही प्रेम का प्रतीक मानते हुए उसके पल्लवन एवं परिपाक का वर्णन हमें महीमहम् महाकाव्य में भी देखने को मिलता है। द्रष्टव्य है एक उदाहरण–

''प्रेम्णा विधार्येत नरः पृथिव्यां प्रेम्णा निवार्येत लयप्रणाशः।
प्रेम्णा सुबध्येत परात्मयोगः प्रेम्णैव विश्वस्थितिरर्ज्यतां वै॥''

इतना ही नहीं आपने और भी अनेक रचनाएं की हैं। आपके प्रखर वैदुष्य एवं सर्वोत्कृष्ट रचनाओं के कारण आपको अनेक बार पुरस्कृत व सम्मानित भी किया गया। यथा– 'दानामृतम्' नामक रचना पर आपको सन् 1999-2000 में राजस्थान संस्कृत अकादमी द्वारा 'नवोदित प्रतिभा पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया। इसी प्रकार सन् 1997-98 में राजस्थान संस्कृत अकादमी जयपुर द्वारा ही ''बोधग्रह'' नामक रचना पर आचार्य नवल किशोर कांकर वेद-वेदांग पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया।

आप जैसे प्रख्यात कवि एवं साहित्यकार का सम्मान निःसंदेह मातृभूमि का सम्मान ही है।

---

1. ''द्विजेन्द्र लाल शर्मा 'पुरकायस्थ' की कृतियों का समालोचनात्मक अध्ययन'' नामक विषय पर राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से डॉ. शिवसागर त्रिपाठी के निर्देशन में शोधकार्य भी सम्पन्न हुआ है।

पं. नवलकिशोर काङ्कर

राष्ट्रवेद के रचयिता, ढूंढारी, राजस्थानी व वैदिक वाङ्मय के प्रखर रचनाकार पं. नवलकिशोर काङ्कर ने राष्ट्रवेद की रचना की तथा ब्रजभाषा में ७०० पद्यों में नवलसतसई की रचना की।

भारतवर्ष में गीर्वाणभारती साहित्य की अहर्निश समृद्धि होती रही है। 'संस्कृत भाषा सर्वासु भाषासु प्राचीनतमा'। इस वसुन्धरा पर कोई ऐसी भाषा नहीं है जो संस्कृत से प्राचीन हो। यदि हमें भारत की प्राचीन संस्कृति जाननी हो तो हमें देववाणी में सृजित ग्रन्थों को टटोलना पड़ेगा। देश के अनेक मूर्धन्य साहित्यकारों ने निःस्वार्थ भावना से साहित्य सेवा की है। वस्तुतः ऐसे साहित्यकारों का अवदान एवं यशोगान स्तुत्य एवं चिरस्मरणीय है। विशेष रूप से जयपुर की सुपावन धरती पर साहित्य रचनाएँ हुई हैं। अतः सुधीजनों ने स्वविवेक से इसे 'अपरा काशी' कहा है जो निस्संदेश उचित है। ऐसे विचक्षण साहित्यकारों में स्वनामधन्य कवि-शिरोमणि, विद्यावाचस्पति एवं कविचक्रवर्ती पं. नवलकिशोर जी काङ्कर प्रमुख हैं। निश्चय ही आपकी व्यक्तित्व रूपी प्रभा से तथा प्रभारूपी आह्लाद से सभी विज्ञ-जन सदा-सदा के लिए प्रभावित हो जाते थे। आपका जन्म अपरा काशी अर्थात् जयपुर में आषाढ़ कृष्णा त्रयोदशी संवत् १९६७ (१९१०) को ज्योतिष के चूड़ान्त विद्वान् एवं सुविख्यात कथावाचक पण्डित श्री जमनालाल जी काङ्कर के आँगन में हुआ। आपका लालन–पालन एक साधारण परिवार के रूप में हुआ। आप जाति से गौड़ विप्र हैं। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा जयपुर में ही पूर्ण हुई। साधारण रूप से संस्कृत-साहित्य व व्याकरण की शिक्षा अपने पिताजी से प्राप्त की। शैशवावस्था में ही आपके माता–पिता का निधन हो गया। अतः आपको आर्थिक संकट से गुजरना पड़ा। पिता के अभाव में आपके अर्चनीय पितृव्य पं. गणेशनारायणजी ने आपका पालन-पोषण किया। कक्षा षष्ठी तक आप नियमित छात्र के रूप में रहे। तत्पश्चात् विशेष जिम्मेदारियाँ एवं आर्थिक कठिनाइयाँ आने से आप एक स्वतन्त्र छात्र के रूप में रहे।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सप्तमी कक्षा से साहित्याचार्य (P.G.) तक स्वयंपाठी के रूप में रहकर उल्लेखनीय उपलब्धि प्राप्त करना आपकी अद्भुत एवं

विलक्षण प्रतिभा का परिचायक है। मूलतः आपने यह सिद्ध कर दिखाया है कि अध्ययन नियमित छात्र ही नहीं प्रत्युत् एक परिश्रमी स्वयंपाठी छात्र भी कर सकता है। इतनी अल्पावस्था में स्वयंपाठी के रूप में रहकर भी निबन्ध-लेखन, पद्य-विधा तथा काव्य पाठादि में रुचि रखना शायद आपकी......। स्वकीयाध्यवसाय से ही विद्याध्ययन करते हुए विभिन्न-भाषाविदों की छत्र-छाया में रहकर अर्थात् ज्ञान रूपी विशाल वृक्ष के नीचे बैठकर व्याकरण-साहित्य दर्शनादि विषयरूपी फलों को प्राप्त कर सर्वप्रथम आपने साहित्य काव्य-तीर्थ की परीक्षा कलकत्ता से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। इसी प्रकार अपने अध्ययन क्रम को जारी रखते हुए 'व्याकरण शास्त्री' पंजाब से प्रथम श्रेणी में ही उत्तीर्ण कर गौरव प्राप्त किया। इसके तत्पश्चात् आपने 'साहित्याचार्य' परीक्षा राजस्थान शिक्षा विभाग से द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की। हिन्दी विषय से भी आपने अनेक परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं।

यथा– हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से 'साहित्य-रत्न' नामक परीक्षा द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की। इसी परिप्रेक्ष्य में पंजाब से 'प्रभाकर' परीक्षा प्रथम श्रेणी में, राजस्थान विश्वविद्यालय से 'साहित्य रत्नाकर' नामक परीक्षा द्वितीय श्रेणी से उत्तीर्ण कर शिक्षा जगत् में अपना सम्मानित एवं महत्त्वपूर्ण स्थान बनाया। इनके अतिरिक्त इण्टरमीडियेट एवं हिन्दी एडवांस परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। आपने 'समीक्षा चक्रवर्ती' पण्डित मधुसूदन जी ओझा जैसे आचार्यों के पास रहकर विद्यार्जन किया। जैसा कि सुरभारती के चूड़ान्त विपश्चित् देवर्षि कलानाथजी शास्त्री ने लिखा है–

'पं. नवलकिशोर काङ्करेण जयपुरस्थानां चूड़ान्तविपश्चितां शिष्यत्वमङ्गीकृत्य विविधशास्त्राण्यधीतानि। वेदवाचस्पतिभ्यः श्री मधुसूदन ओझा महाभागेभ्यो वेदविज्ञानस्य, साहित्य वेदान्ताचार्य श्री बिहारीलालशर्मभ्यः साहित्यस्य श्री हरिशास्त्रिभ्यः काव्य-रचना कलायाः श्री विजयचन्द्र-चतुर्वेदाद् वेदसंहितापाठस्य, श्री सूर्यनारायणाचार्येभ्यः काव्यनाटकादीनां च शिक्षां गृहीतवता नवल किशोरेण स्वकीयप्रतिभाबलाद् गद्य-पद्यरचनायां यत् प्रावीण्यमधिगतं तेनास्य यशः सपद्येव समस्तेऽपि देशे प्रससार।'

– सुधीजनवृत्तम् पृ.सं. ७७

अपनी शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात् सर्वप्रथम आपने संस्कृत कॉलेज, राजगढ़ में शिक्षक पद पर कार्य किया। तत्पश्चात् कॉलेज के अन्तर्गत संचालित पाठशाला विभाग के प्रधानाध्यापक नियुक्त किए गए। अनन्तर आपने पारीक वरिष्ठ विद्यालय के हिन्दी शिक्षक के रूप में कार्य किया। इसके बाद आपने पारीक महाविद्यालय, जयपुर में संस्कृत प्राध्यापक पद पर कार्य किया। आप अपनी अमिट सेवाओं के कारण संस्कृत विभाग के अध्यक्ष भी नियुक्त किए गए। इस प्रकार संस्कृत विभागाध्यक्ष पद पर सेवा करते हुए १९७४ में आप सेवानिवृत्त हुए। शृंखला की इस कड़ी में निरन्तर ४० वर्ष तक कॉलेज में जो सेवाएँ दीं, उसका उल्लेखनीय योगदान रहा है। तदनन्तर आपने श्रौत-मुनि निवास, वृन्दावन में वेदों का भाष्य लिखा। आप न केवल एक कुशल शिक्षक एवं भाष्यकार ही रहे प्रत्युत् आपको अनेक श्रेष्ठतम सम्मान भी प्राप्त हुए।

यथा– पारीक कॉलेज प्रबन्ध समिति ने कुशल कार्य एवं उल्लेखनीय एवं सराहनीय योगदान पर आपको 'सुवर्ण पदक' से पुरस्कृत किया। आपका निबन्धादि-लेखन में असाधारण अधिकार था। इसी परिप्रेक्ष्य में राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रायोजित निबन्ध प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त कर साहित्य जगत् में अपना सम्मानित स्थान बनाया। पं. श्री दुलारेलाल जी भार्गव की अध्यक्षता में विद्याभवन कांकरोली के रजत- जयन्ती के पावन अवसर पर आयोजित कवि सम्मेलन में आपको 'कवि-भूषण' की उपाधि से विभूषित किया गया। इसी प्रकार भारतीय विद्या प्रतिष्ठान समिति द्वारा आयोजित अ.भा. संस्कृत साहित्य सम्मेलन मुजफ्फरनगराधिवेशन में बिहार के भूतपूर्व महामहिम राज्यपाल डॉ. एम. एस. अणे ने आपको 'कवि शिरोमणि' की उपाधि से सम्मानित किया। एक बार देहरादून में विशाल-विप्र सम्मेलन का आयोजन किया गया उसमें आप सभापति जैसे महत्त्वपूर्ण पद पर विराजमान हुए। इसी प्रकार प्रादेशिक ब्रह्म सभा के द्वितीय अधिवेशन 'मलारना' नामक स्थान पर सभापति नियुक्त किये गये। इसके अतिरिक्त आपको योगिराज स्वामी श्री माधवानन्द जी महाराज प्रतिष्ठापित ज्ञानपीठ, जयपुर द्वारा ''कवि चक्रवर्ती'' जैसी मानद् उपाधि से विभूषित किया गया। इसी प्रकार भा.वि.प्रचार समिति ने आपको ''विद्यावाचस्पति '' की उपाधि से सम्मानित किया है।

१९७५ में ''यात्राविलासम्'' नामक काव्य पर राजस्थान सरकार द्वारा आपको पुरस्कार प्राप्त हुआ। इसी काव्य पर उत्तरप्रदेश सरकार के राज्यपाल ने भी पुरस्कृत किया। इसके पूर्व राजस्थान संस्कृत संसद्, जयपुर द्वारा १९७२ में अखिल भारतीय प्रौढ़ देवभाषा गद्य लेखन प्रतियोगिता में ''यात्रा-विलासम्'' नामक ग्रन्थ पर आपको ''गद्य सम्राट्'' की उपाधि से विभूषित किया गया। सत्य है, आपका सौजन्य एवं वैदुष्य मिलकर मानो सुगन्ध संयोग की सृष्टि करता हो। ऐसे वैदुष्य एवं सज्जनता के संगम स्थल काङ्कर जी को अखिल भारतीय सांस्कृतिक संस्था भारती परिषद् प्रयाग द्वारा महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय जी ने सन् १९७३ में आपको ''महामहिमोपाध्याय'' अलङ्कार से अलङ्कृत किया। राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर से ''प्रबन्धगद्यमाधुरी'' नामक काव्य पर १९७७ में ''माघ-स्मृति'' पुरस्कार से सम्मानित किया गया। संप्रति संस्कृत कृतियों पर पुरस्कार राजस्थान संस्कृत अकादमी, गणगौरी बाजार, जयपुर द्वारा प्रदान किया जाता है। उक्त अकादमी की स्थापना १९८० में हुई। वर्ष १९७९ में अकादमी का वार्षिकोत्सव भरतपुर मण्डल में आयोजित किया गया जिसमें आपको ''विशिष्ट साहित्यकार'' नामक सम्मान से सम्मानित किया गया। मेवा संस्थान, अजमेर ने ''हारीत ऋषि पुरस्कार'' से सम्मानित किया। संप्रति यह पुरस्कार 'महाराणा मेवाड़ फाउण्डेशन, उदयपुर द्वारा प्रदान किया जाता है। वैदिक संस्कृति प्रचारक संघ ने 'पट्टाभिरामवेदमीमांसा' पुरस्कार से पुरस्कृत किया। संस्कृत दिवस (श्रावणी पर्व) पर राजस्थान शासन द्वारा १९९४ में आपका सम्मान किया गया। राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन द्वारा १९९४ में अभिनन्दन-ग्रन्थ समर्पित किया गया। भारतीय विद्या भवन, मुम्बई द्वारा आपको दो लाख की भारतीय मुद्रा के साथ ''गुरुगंगेश्वरानन्दस्मृति'' जैसे गौरवपूर्ण सम्मान से सम्मानित किया। वस्तुतः आपके लिए यह उक्ति सार्थक है–

''मार्तण्डोऽयंकाङ्कर विलक्षणः विचक्षणः।''

इसके अतिरिक्त वृन्दावन धर्मपीठ ने भी आपका बहुत-बहुत आभार व्यक्त किया है। आपकी अनेक काव्य रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। यथा– राष्ट्रवेदः, शास्त्र-सर्वस्वम्, यात्रा-विलासम्, प्रबन्ध-मकरन्दः, प्रबन्धामृतम्, धर्मकर्मसर्वस्वम्, विप्रकृपा, नवल-सतसई, यात्रा

के सुखद क्षण, सैल-सपाटा, लाखीणा बोल, राजस्थानी-कादम्बरी, कलजुग सतसई द्विजदशाप्रकाशः, कृतिपरिचयः, यज्ञोपवीतविज्ञानम्, महाकवि कुमारदासः एवं संस्कृत-साहित्यं हिन्दी कवयश्च।

पत्रकारिता के क्षेत्र में भी आपका उल्लेखनीय योगदान रहा है। यथा– 'भारती' एवं 'संस्कृत रत्नाकर' नामक पत्रिकाओं में भी आपके ललित लेख प्रकाशित हुए हैं। यथा– 'हिन्दी-कवीनां संस्कृत भाव-सश्चितिः' नामक लेख संस्कृत रत्नाकर १७/१ में, ''आयुर्वेद विमर्शः'' नामक लेख संस्कृत रत्नाकर ८/३ में, महाकवि तुलसीदासः भारती १/१० में, 'एका स्मृति' संस्कृत रत्नाकर २४/१२ में, 'सुकन्या' भारती में तथा मुम्बापुरी वर्णनम् संस्कृत रत्नाकर में प्रकाशित हुए हैं। द्रष्टव्य है मुम्बापुरी की एक छटा–

''.......महान्धकारावृतपण्यपङ्क्तिषु तडित्प्रदीपाभिनयेन भास्करः।
मिषेण विद्युद्व्यजनस्य चानिलः प्रीत्याऽथवा यामधितिष्ठतः॥''

शास्त्रसर्स्वम्

प्रस्तुत ग्रन्थ १९८५ में प्रकाशित हो चुका है। यह कृति १६७ पृष्ठों में विभक्त है। वेद, दर्शन तथा साहित्य नामक तीन स्कन्धों में विभक्त है। यथा– वेद-विभाग– इसमें सर्वप्रथम कवि ने चार श्लोकों में मङ्गलाचरण किया है। यथा– सर्वप्रथम दो श्लोकों में विद्या की अधिष्ठात्री देवी माँ सरस्वती की उसके बाद तृतीय श्लोक में अपने गुरु पं. मधुसूदन जी ओझा की वन्दना तथा चतुर्थ श्लोक में पण्डितों के मनोविनोदार्थ स्वग्रन्थारम्भ के बारे में उल्लेख किया है। प्राज्ञ लेखक ने 'ऋषि' शब्द की व्युत्पत्ति, विभिन्न अर्थों में ऋषि शब्द का प्रयोग तथा चार विभाग यथा– प्राण रूप ऋषि, नक्षत्र रूप ऋषि अथवा तारा रूप ऋषि, तत्त्व द्रष्ट रूप ऋषि तथा वक्तृरूप ऋषि हैं। काङ्कर जी ने अपने गुरु पं. मधुसूदन जी ओझा के प्रमाण को उट्टङ्कित किया है–

'प्रवृत्तिविषयाणां वैभिन्यादृषिशब्दस्यापि प्रवर्त्तकत्वरूपोऽर्थस्त्रिधा विभज्यते। तेन सृष्टिप्रवर्त्तकाः ऋषयः, वेद-प्रवर्त्तकाः ऋषयः श्रोत्र- प्रवर्त्तकाश्च ऋषयस्त्रिविधा भवन्ति।''

अर्थात् लेखक ने यहाँ तीन प्रकार के ऋषियों का उल्लेख किया है। यथा– सृष्टिप्रवर्त्तक ऋषि, वेद प्रवर्त्तक ऋषि और गोत्र प्रवर्तक ऋषि। ''वैदिक विज्ञान'' शीर्षक

के माध्यम से आधुनिक विज्ञान विषयों का विवेचन किया है। यथा– सौर-विज्ञानम्, जल, थल तथा नभोगामी विमान का वर्णन, वृष्टि-विज्ञान, ग्रहोपराग-विज्ञान तथा केन्द्राकर्षण-शक्ति-विज्ञान आदि वेदों पर आधारित विषयों का विवेचन प्रस्तुत किया है।

वेदों के पौरुषेय तथा अपौरुषेय के प्रसङ्ग में लेखक ने विभिन्न दर्शनादि विचारों के माध्यम से अपना अभिप्राय प्रकट किया है। यथा–

''सोऽयं वेदोऽपौरुषेयः प्रतिपत्तव्यः ईश्वरप्रजापति रूपत्वात्।''

काङ्कर जी ने 'वैदिककालिकं राज्यं राष्ट्र भावना।' नामक शीर्षक में वैदिककालीन राज्यों का नामोल्लेख किया है– साम्राज्य, स्वराज्य, भौजराज्य, महाराज्य, पारमेष्ठयराज्यम् तथा आधिपत्य आदि।

दर्शन विभाग– इस विभाग में लेखक ने दर्शन विभाग के व्याख्यान ग्रन्थ में छः शीर्षकों के माध्यम से संक्षिप्त उल्लेख किया है। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा तथा वेदान्त नामक छः दर्शनों के स्थान पर काङ्कर जी ने मुख्य रूप से तीन दर्शनों को ही प्राथमिकता दी है। यथा– वैशेषिक सांख्य और वेदान्त। ''भगवद्गीता तद्भाष्यमतानि चे'' इस शीर्षक के माध्यम से लेखक ने रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, श्री वल्लभाचार्य तथा लोकमान्यतिलकादि का नामोल्लेख कर पं. मधुसूदन जी ओझा के गीताभाष्यसिद्धान्त का भी उल्लेख किया है। लेखक ने गीता में चार योगों को ही अङ्गीकार किया है। यथा– ज्ञानयोग, धर्मयोग, वैराग्य योग और ऐश्वर्य योग।

साहित्य विभाग– इस विभाग में लेखक ने साहित्य अलङ्कारों, गुणों, रसों, शब्द–शक्तियों तथा काव्य दोषों आदि का विश्लेषणात्मक विवेचन किया है। इसमें मम्मटाचार्यकृत काव्यप्रकाश, आचार्य विश्वनाथकृत, साहित्य-दर्पण, रसगङ्गाधर आदि ग्रन्थों पर लेखक ने वैदुष्यपूर्ण अपना मत प्रकट किया है।

रस तत्त्व निरूपण के परिप्रेक्ष्य में लेखक ने लिखा है–

''लोके शोकादिहेतुभ्यः कामं दुःखं भवेत् परमलौकिके काव्यलोके तु तेभ्यः सुखमेपोव जायते। अतो विलक्षणो हि खलु काव्य-रसप्रभावः।''

ग्रन्थ के अन्त में ग्रन्थकार ने अपने गुरु पं. मधुसूदन जी ओझा, गौड़ ब्राह्मणवंश में जन्म, वशिष्ठ गोत्र तथा शास्त्रसर्वस्वम् का उल्लेख किया है–

काङ्करनवलकिशोरः श्रीमन्मधुसूदनाप्तसद्विद्यः।
वृन्दावनमधितिष्ठन्नलेलिखीत् शास्त्रसर्वस्वम्।।
श्रीमद्वाजसनेय-शुक्लयजुषो माध्यन्दिनाम्नायवित्।
श्रोतस्मार्त्तविधानधीस्त्रिप्रवरो गोत्रेण वाशिष्ठवः।।
गौडब्राह्मणवंशलब्धजननो यः काङ्करोपाह्वकः।
सोऽयं याचति सत्कृपां हि नवलः शास्त्राब्धिपारङ्गतान्।।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि यह ग्रन्थ वस्तुतः साहित्यिक-गरिमा, भाषा प्राञ्जल, सरल तथा प्रवाहपूर्ण है। इस ग्रन्थ से स्वतः सिद्ध हो जाता है कि महामहिमोपाध्याय काङ्कर जी साहित्य ग्रन्थों के मूर्धन्य विद्वान् थे। आप द्वारा लिखित यह कृति वस्तुतः स्तुत्य एवं प्रशस्य है।

आप न केवल गद्य, पद्य, निबन्ध, कथा तथा समीक्षा आदि में ही पारङ्गत हैं प्रत्युत् वैदिक भाषा में नवीन सूक्तों की 'राष्ट्र वेद' नामक नवीन रचना भी वैदिक सूक्तों में सृजित की है। इसमें काङ्कर जी ने विभिन्न राष्ट्र-नेताओं को लक्ष्य करके वैदिक भाषा में ११ सूक्तों की रचना की है। कवि का राष्ट्रगायत्रीस्तवन पठनीय है–

'महोराष्ट्रस्य धीमहि वरीयो द्युम्नवर्धनम्।
धियस्तनः प्रशोधयात्।

इसी ग्रन्थ का हिन्दी एवं अंग्रेजी अनुवाद आपके सुपुत्र एवं राष्ट्रपति सम्मानित विद्वान् डॉ. नारायण शास्त्री जी काङ्कर ने किया है। 'यात्राविलासम्' नामक गद्य काव्य में रचनाकार ने अपनी कान्ता के साथ उत्तराखण्ड यात्रा का सरल एवं ललित वर्णन किया है। जिसमें कवि ने पर्वतराज हिमालय के सुप्रसिद्ध तीर्थों, पर्वत, घाटियों तथा गोमुखादि का वर्णन प्रस्तुत किया है। इस प्रकार आप न केवल पद्य विधा में ही प्रत्युत एक गद्य सम्राट् भी हैं। जैसा कि बाणभट्ट की शैली सदृश रचना करते हुए हिमपात दृश्य का चित्राङ्कन किया है।

''...........दधीयितं नदीतटकर्दमैः, दुग्धायितं गङ्गपयसां फेनैः शंखायितं वन बिल्वफलैः, कुन्दपुष्पायितं वनकुसुमस्तबकैः, हंसायितं च नदीप्रवाहान्तः प्रस्तरखण्डैः।''

इसके अतिरिक्त आपके प्रकाशित ग्रन्थों में धर्मकर्मसर्वस्वम्, आधुनिक-काव्य-मञ्जरी, सरलसंस्कृत-व्याकरण, स्वामिश्रीमाधवानन्द महाराजानां-जीवनदर्शनम्, प्रबन्धमकरन्दः तथा स्वागत-मङ्गल-प्रशस्ति प्रमुख हैं।

आप द्वारा विरचित ब्रजभाषा में ''नवलसतसई' नामक ग्रन्थ भी है। इस पद्य रचना में अर्थात् दोहाच्छन्दादि में रचित ७०० मुक्तकों का संकलन है। अतः यह निर्विवाद सत्य है कि काङ्कर जी न केवल सुरवाणी के ही मनीषी थे प्रत्युत् राजस्थानी, ढूँढारी तथा वैदिक भाषा के भी अप्रतिम विद्वान थे। यथा– ढूँढारी भाषा में ''सैल सपाटा तथा राजस्थानी भाषा में ''लाखीणा बोल'' प्रमुख हैं।

आपने छात्रों एवं शिक्षकों के हितार्थ कुछ ग्रन्थों की हिन्दी एवं संस्कृत में व्याख्या भी की है। यथा– ''किरातार्जुनीयम्'' (प्रथम सर्ग) तथा कुमार संभवम् (पञ्चम सर्ग)। इस प्रकार आप एक सशक्त एवं कुशल व्याख्याकार भी हैं।

इसके अतिरिक्त आप एक कुशल एवं विज्ञ संपादक के रूप में भी साहित्य जगत् में छाये हुए हैं। आप द्वारा संपादित कुछ ग्रन्थ निम्न हैं–

१. विज्ञान विद्युत, २. शालिहोत्रग्रन्थ

३. गीताविज्ञानभाष्य भूमिका ४. श्री मधुसूदन-ग्रन्थमाला

५. पितृ-समीक्षा तथा ६. पारीक कॉलेज पत्रिका

(श्री बिहारीलालदाधीचानां व्यक्तित्व–कृतित्व परिचायिका स्मारिका)। ''सुरभारती-गीतिः'' नामक कविता में कवि ने देववाणी के प्रचार एवं इसके अभ्युत्थान के परिप्रेक्ष्य में प्राञ्जल भावगाम्भीर्य एवं प्रवाहमयी भाषा में इस प्रकार लिखा है–

गोविन्द मन्निवेदनं हृदयेऽवधार्यताम्।
सुरभारती गृहे-गृहे भूयः प्रचार्यताम्।।
दुःशासनार्दिता यथा कृष्णा प्रपालिता।
ततोऽप्यतीव दुःखिता एषा निभाल्यताम्।।

सन्तोऽपि हा, परस्परं कलहं प्रकुर्वते।

अज्ञानमान्तरं सतां दूरेऽपसार्यताम्।।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आप नैक-भाषाओं के धुरन्धर विद्वान् थे। सत्य है कि इस पावन धरा पर विद्वान् तो अनेक हैं किन्तु वे एक प्राज्ञ लेखक भी हों, दुर्लभ है। अर्थात् विद्वता एवं लेखनीयता असंभव है। जैसा कि कहा भी है–

विद्वांसो बहवः सन्ति किन्तु सर्वे न लेखकाः।

विद्वत्वं लेखकत्वं च द्वयमेकत्र दुर्लभम् ।।

इस प्रकार न केवल आप विद्वान् ही थे प्रत्युत् एक कुशल एवं कर्मठ पत्रकार के रूप में, प्रवीण संपादक के रूप में, विचक्षण भाष्यकार के रूप में सम्मानित एवं लब्धप्रतिष्ठ कवि एवं समीक्षक के रूप में सुविख्यात एवं चिर-चर्चित थे। वैदिक-छन्दों पर विरचित वैदिक साहित्य में प्रतिभाशाली लेखनी से प्रसूत ऐसे मर्मस्पर्शी काव्य हैं, जिनसे स्फूर्ति तथा प्रेरणा लेकर अवान्तरकालीन कविगण अपने काव्यों को सजाते हैं। इसी श्रेणी के अन्तर्गत महामहिमोपाध्याय काङ्कर जी हैं, जिन्होंने वैदिक छन्दों पर नवीन शैली में अपनी लेखनी चलाकर वैदिक साहित्य में अभिवृद्धि की है। इतना ही नहीं कि आपने वैदिक जगत् में ही अपना अवदान दिया प्रत्युत् लौकिक साहित्य जगत् में आपका अवदान स्वर्णाक्षरों में है। आपका वैदिक एवं लौकिक भाषा पर असाधारण अधिकार था। इस प्रकार ऐसे मातृभूमि के पावन सपूत एवं सुरवाणी के विद्वान् का निधन सन् १९९६ के जून मास में हुआ। आपके निधन की शोकरूपी सूचना देश के मुख्य समाचार पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थी।

राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर ''पं. नवल किशोर काङ्कर वेद वेदाङ्ग पुरस्कार से प्रतिवर्ष वेद-वेदाङ्गों पर रचना करने पर ६००० रु. की राशि सहित ससम्मान यह पुरस्कार प्रदान करती है। अतः अनेक विद्वान् वैदिक-वेद-वेदाङ्गों पर रचना करने पर यह पुरस्कार प्राप्त कर सकते हैं।

पं नारायण शास्त्री काङ्कर आपके ही ज्येष्ठ पुत्र हैं। डॉ. नारायण शास्त्री जी काङ्कर राष्ट्रपति सम्मानित विद्वान् हैं।

ज्ञानरूपि सुरभि से सुवासित एवं सुपल्लवित, राष्ट्ररत्न, नानाग्रन्थ-प्रणेता, कविकुलतिलक गद्यसम्राट् काङ्कर जिनकी साहित्य स्रोतस्विनी में गोते लगाने से वैदुष्य एवं शान्ति सुलभ है।

ऐसे वैदुष्य गरिष्ठ कृतिकार का अवदान राजस्थान के संस्कृत साहित्य में विशेषतः उल्लेखनीय है।

---

१. राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर ने पं. श्री नवलकिशोर काङ्कर'' के दिवंगत होने पर दिसम्बर, १९९६ में जयपुर में स्मृति दिवस जयन्ती के रूप में आयोजन किया गया। इसमें शोधपत्रों का वाचन हुआ जिनका प्रकाशन स्वरमङ्गला के ''विशिष्टाङ्क'' में हुआ।

२. ''आचार्य नवलकिशोर काङ्कर का व्यक्तित्व और उनकी रचनाओं का समीक्षात्मक अध्ययन'' नामक विषय पर राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर से डॉ. हरिराम आचार्य के निर्देशन में डॉ. शिवाङ्गना शर्मा ने सन् १९९२ में पी–एच.डी. की उपाधि प्राप्त की है।

३. ''संस्कृत पत्रसाहित्य में आचार्य नवलकिशोर काङ्कर का योगदान'' नामक विषय पर राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से डॉ. शिवसागर त्रिपाठी के निर्देशन में श्री मदनमोहन शर्मा ने लघुशोध (एम.फिल.) कार्य किया है।

४. कवि की अन्य रचनाओं पर भी शोध कार्य सम्पन्न हुआ है।

पं. नित्यानन्द शास्त्री ''आशुकवि''

श्रीरामकथा पर आधारित महाकाव्य लिखने वाले प्रखर रचनाकार पं. नित्यानन्द शास्त्री ने श्रीरामचरिताब्धिरत्नम् महाकाव्य की रचना की। जर्मन विश्ववविद्यालय के प्रवाचकों ने जोधपुर आकर आपके सांस्कृतिक और साहित्यिक अवदान को लक्ष्य कर सम्मानित किया था।

आपका जन्म माघ बुदी एकादशी संवत् १९४६ तदनुसार १८८९ को दाधीचविप्र ''कासल्या'' नामक वर्ग में जोधपुर में हुआ। आपके पिता पण्डित माधव कवीन्द्र थे। प्रारम्भिक शिक्षा प्रायः आपने अपने पिताजी से ही प्राप्त की। जब आप सप्तवर्षीय अल्पावस्था में थे तभी आपके पिताजी का निधन हो गया। इसके पश्चात् आपके ज्येष्ठ भ्राता पण्डित भगवतीलाल जी ने आपकी शिक्षा का पूर्ण प्रबन्ध किया।

आर्थिक दृष्टि को मध्य नजर रखते हुए नित्यानन्दजी ने सर्वप्रथम वैदिक पाठशाला, जोधपुर में कार्यारम्भ किया। तत्पश्चात् उच्च शिक्षा ओरियण्टल कॉलेज, लाहौर में प्रारम्भ की। इसी महाविद्यालय से इन्होंने ''शास्त्री'' परीक्षा उत्तीर्ण की। यहाँ पर म.म. पण्डित शिवदत्त ''दाधीच'' प्राध्यापक थे। दाधीच काव्यमाला सम्पादन में व्यस्त थे। इस सम्पादन कार्य में पं. नित्यानन्द ने भी पूर्ण सहयोग प्रदान किया।

आपकी काव्य पाठ करने में बहुत रुचि थी। अतः लाहौर में स्थित 'विद्वत्परिषद्' नामक संस्था काव्यपाठादि का आयोजन किया करती थी जिसमें आपकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। आप लाहौर से शिक्षा प्राप्त कर अपने घर अर्थात् जोधपुर आ गए। अपने अध्ययन की समाप्ति के बाद आप वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित हो रहे ग्रन्थों के संपादनार्थ मुम्बई चले गए। अर्थात् आप पं. शिवदत्त जी की प्रेरणा से वेंकटेश्वर प्रेस मुम्बई गए। वहाँ पर आपने विभिन्न ग्रन्थों का वैदुष्यपूर्ण संपादन किया तथा स्पल्प काल के लिए महावीर कॉलेज में प्राध्यापक पद पर भी कार्य किया।

आपकी संपादन कला प्रवीणता की यशरूपी पताका सर्वत्र फहराने लगी। आपकी संपादन कला से प्रभावित होकर जैन प्रकाशन संस्थान भावनगर, गुजरात के सादर आमंत्रण पर आप भावनगर जाकर आत्मानन्द ग्रन्थमाला के विभिन्न ग्रन्थों का पाण्डित्यपूर्ण

संपादन किया। वहाँ सम्पादन कार्य में व्यस्त रहते हुए भी आपने अनेक जैन साधुओं को देववाणी का अध्ययन करवाया। इस पर जैन-मुनियों ने आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। विभिन्न सुधीजनों के मुखारविन्द से नित्यानन्द जी की प्रशंसा सुनकर जोधपुर के प्रसिद्ध तत्कालीन शासक सरप्रताप सिंह ने शास्त्री जी को सादर आमंत्रित किया अर्थात् सन् १९१२ में जोधपुर नरेश के आग्रह को स्वीकार कर ''नोबल्स स्कूल'' में संस्कृताध्यापक पद पर नियुक्त हुए। उपर्युक्त संस्था में प्रायः सामन्तवर्ग एवं राजपुत्रों के लिए ही शिक्षा प्रदान की जाती थी। जोधपुर के सुविख्यात शासक महाराजा उम्मेदसिंह भी आपके शिष्य रहे। सभी छात्र वर्ग प्रायः आपकी वैविध्यपूर्णा अध्यापन शैली से काफी प्रभावित थे।

बोन यूनिवर्सिटी जर्मनी के संस्कृत प्रोफेसर का स्थान देने के लिए जर्मनी ले जाने का आपसे बहुत अनुरोध किया था। 'राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन, जोधपुर' के आप स्वागताध्यक्ष भी थे। नोबल्स विद्यालय से आप १९२७ में सेवानिवृत्त हुए। तदनन्तर आप महाराज के ही यहाँ मृत्युपर्यन्त पुस्तकालयाध्यक्ष पद पर सेवारत रहे। आप श्रेष्ठ आशुकवि थे। आप शीघ्र श्लोक बना देना अर्थात् क्षिप्र रचना कर उसका वादन करने में निपुण थे। अतः आपके आशुकवित्व के पाण्डित्य से प्रभावित होकर लाहौरस्थ विद्वत्परिषद् ने ''आशुकवि'' की उपाधि तथा विभिन्न साहित्यिक एवं सामाजिक संस्थाओं ने आपको ''कविभूषण' 'कवि रत्न' एवं 'विद्या वाचस्पति' आदि उपाधियों से विभूषित किया। कृतित्व क्षेत्र में दृष्टिपात करने पर यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि ''रामचरिताब्धिरत्नम्'' नामक महाकाव्य के कारण शास्त्रीजी की विशेष ख्याति एवं प्रतिष्ठा बढ़ी। यह महाकाव्य प्रायः १४ सर्गों में विभक्त है। इस महाकाव्य में राम के चरित्र का उल्लेख है। सामान्यतया सभी सर्गों में काव्य की उत्तम छटा दृष्टिगोचर होती है। इस महाकाव्य के १४वें सर्ग में छन्द-वैचित्र्य स्पष्ट परिलक्षित होता है। प्रस्तुत पद्य आपकी उत्तम काव्य शैली का परिचायक है–

'चित्रात्मतां तदिति चित्रविचेष्टितस्य
रामस्य तत् प्रकटिता चरितस्य बुद्ध्वा।
संप्रेरितः स्वहृदये हृदयेश्वरेण
तेनैव चित्रमारचयामि कायम्॥'

इस महाकाव्य पर ''शाण'' नामक अत्युतम टीका आपके ज्येष्ठ भ्राता भगवतीलाल ने की।

इसके अतिरिक्त आपकी निम्न संस्कृत काव्यकृतियाँ प्रसिद्ध हैं– **मारुतिस्तवः, हनुमद्दूतम्, लघुछन्दोलङ्कारदर्पणः, आर्यामुक्तावली, आर्यानक्षत्रमाला, पुष्पचरित, कृष्णाष्टप्रास** तथा **विविध देवस्तव संग्रह** हैं। आपने म.म. पण्डित विश्वेश्वरनाथ रेऊ द्वारा लिखित 'विश्वेश्वर स्मृति' के द्वितीय भाग अर्थात् 'हिन्दू लॉ' का संस्कृत में अनुवाद भी किया। आप द्वारा विरचित हिन्दी की निम्न काव्य-कृतियाँ प्रसिद्ध हैं– ऋतुविलास, द्विजदशादर्पण, कुरीती, बत्तीसी आदि शक्ति–वैभवम्, मुक्तककविता-कलाप, मुक्तक लेख-संग्रह, उन्नति दिग्दर्शन (गद्य) एवं श्रीरामकथा-कल्पलता।

अतः आप न केवल देववाणी के विद्वान् एवं कवि ही हैं, प्रत्युत् हिन्दी भाषा के भी कुशल रचनाकार हैं। आपने 'सूक्ति रत्नावली, चेतीदूतम्, आर्यविधानम् (दोनों भाग) आदि ग्रन्थों का संपादन किया। पत्रकारिता के क्षेत्र में भी आपका उल्लेखनीय योगदान रहा है। पत्रिकाओं में ही आपने 'दधिमती' और 'सनातन' नामक पत्रिकाओं का संपादन किया।

यह सर्वविदित है कि अमरवाणी विश्व की प्राचीनतम भाषा एवं सभी भाषाओं की जननी है। इस भाषा में कवित्व पाटवता का निर्वहन करने वाले पुंगवपुरोधा विरले ही होते हैं। अतः काव्य रूपी रस निर्झरिणी को वीणा रूपी झंकार से झंकृत करने वाले जोधपुर वास्तव्य कविवरेण्य कविरत्न पं. नित्यानन्दजी शास्त्री को संस्कृत-जगत् में उसी प्रकार जाना जाता है, जिस प्रकार शीत-ऋतु में प्रकाश के लिए इस संपूर्ण संसार को प्रकाशित करने वाला सूर्य।

देववाणी के मूर्धन्य मनीषी पं. नित्यानन्द शास्त्री ने समूचे भारतवर्ष में अपने वैदुष्य का डंका बजाकर अपनी विलक्षण प्रतिभाप्रभा का बखूबी परिचय दिया है। उल्लेखनीय है कि एक बार प्राध्यापक वर्ग ने अष्टाध्यायी को लक्ष्य कर श्लोक रचना करने का आदेश दिया, जिसे मेधावी नित्यानन्द जी ने शीघ्र ही इस प्रकार मौलिक पद्य की सर्जना कर पण्डितमण्डली को आश्चर्य में डाल दिया। यथा–

''इतो मनुष्यजातेः न परे नः प्रत्ययोऽधिकम्।
अतः आदेः तत्र साधुः धर्मं चरति रक्षति।।
न अन्यत्र नर-जाति से अधिक प्राप्त हो ज्ञान।
अतः सुजन उसमें रखे धर्म-क्रिया में बान।''

कवि ने महाकाव्य के समस्त नियमों का अनुसरण करते हुए अल्पविस्तार में रामकथा वर्णित की है। कवि ने 'रामचरिताब्धिरत्नम्' नामक महाकाव्य में सभी प्रकार के अलङ्कारों का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए नानार्थक नवीन शब्दों का प्रयोग कर साहित्यकोष में अभूतपूर्व श्रीवृद्धि की है।

कवि ने सभी श्लोकों के अक्षरों का प्रयोग करते हुए लिखा है–

''तनूयुजां चित्तहृतः सदैवाऽऽ–
पः सुप्रसन्नाः सरयूस्रवन्त्याः।
स्वाद्याः सुधा द्यामिव यं पवन्तेऽ–
ध्यास्ते धरां कौशलं एष देशः।। (सर्ग 1.1)
यच्छन्त्यभीष्टं शुभदर्शनेन
निवेशयन्ती सुकृतेषु चेतः।
रतेशमङ्कोल्लसिता सतीव
तं सेवते भुक्तिनगर्ययोध्या।। (श्री रामचरिताब्धिरत्नम् 1.2 सर्ग)

कवि ने यमकालङ्कार के माध्यम से गौतमकृत अहल्या को स्वीकार करने के साथ ही चार पादों में यमक की पदावृत्ति का नमूना द्रष्टव्य है–

''प्रकृतिमाकृतिमाप्तवतीमिव कृशतनू-शत-नूतगुणां सतीम्।
तिरित-तारिततामयितां मुनिः प्रियतमां यतमान्द्यमुपागमत्।।''(3.51)

कवि के व्यतिरेक अलङ्कार की मनोरम छटा वर्ण्य है–

''चण्डांशुशीतकिरणाविव सोऽभिरामौ
रक्षोऽन्धकार परिवारनिवारणेच्छू।
क्षित्यां समं समुदितौ मुदितौ निरीक्ष्य
तावन्तराश्रयत कौशिक आप्तकामः।।''

सीता जी के सर्वतोदित मुख, विस्फारित नयन एवं कोमल नाक की कल्पना करते हुए व्यतिरेक अलङ्कार के माध्यम से कवि कहता है–

''सदोदितं हीनकलङ्कमक्षयं समग्रमस्या मुखमिन्दुमण्डलम्।
त्यक्ताऽविकासे जलजन्मनीदृशौ वश शुकस्येव मृदुस्तु नासिका।।
स वार्द्धकेऽपुत्रतया धृताधिर्वसिष्ठमाहूय गुरुं कदाचित्।
भूत्वातिनम्रोऽकथयत्स्वमाधिं तेजस्विनां द्वाश्रयणं तपस्वी।।''

अर्थान्तरन्यास का हृदयस्पर्शी वर्णन पठनीय है–

''प्रस्थितो हिमवतः स गौतमः कृत्यमेतदवसाय योगतः।
तीर्णसिन्धिवव मनो न्यवर्तत नांशतोऽप्यसुकरं हि योगिनाम्।।''

निःसंदेह आपके काव्यों में वर्णन की स्वाभाविकता और विशदता हृदयाकर्षक है। साथ ही कवि प्रकृतिचित्रण में बड़े पारखी हैं। कवि कि वर्णनचातुरी मर्मस्पशी है–

''पिष्टातकैरिव पलाशसुमैः प्रपूर्णं
तत्प्राङ्गणं युवजनाय सुरोचतेऽद्य।
सर्वे स्तुवन्ति पिकवन्दिन उच्चवंश–
वंशीं गिरिर्धमति नृत्यति तेऽन्तरात्मा।। (रामचरिताब्धिरत्नं 9।34)

ग्रन्थ के तृतीय-सर्ग में कवि ने आञ्जनेय के विपत्सागर में निमग्न हो जाने एवं भगवान् श्रीरामचन्द्र से कृपाप्रसाद चाहने तथा सिद्धि आदि का रहस्योद्घाटन बड़े ही वैविध्यपूर्ण ढंग से किया है–

''तत्स्याद् राज्यापहरणमपि स्त्रीहृतिः केन सह्या?
त्रस्तः कुर्यात् किमपि न बलीच्छृङ्खलात् किन्तु दीनः।
लङ्घ्या साऽऽपत्सरिदनद्या ते सत्कृपा नावभाव्य
कां नो सिद्धिं भजति महतामाश्रितः पादपद्मम्।।''

(रामचरिताब्धिरत्नं 11.9)

कवि ने अपनी रचना 'रामचरिताब्धिरत्नम्' में पिपासु भगवान् श्रीरामचन्द्र एवं उनकी प्राणवल्लभा सीता के लिए जब अनुज लक्ष्मण जल लेने जाते हैं। तत्कालीन वेला का सौन्दर्य द्रष्टव्य है–

''सम्प्राप्य तन्वि शुक एष तवैव नासां

पूर्वैः शुभैर्दशति चोष्ठविडम्बिबिम्बम्।

णं यल्लभेत् तृषितोऽपि वने स्वपुण्या–

दभ्येति यद् धृतजलः खलु लक्ष्मणोऽयम्।।''

उल्लेख अलङ्कार के माध्यम से की गई चमत्कारपूर्ण कल्पना कवि की सर्वतोमुखी प्रतिभा का परिचायक है। राम-लक्ष्मण के नगर दर्शनार्थ जाने पर तथा कामिनी आदि के नैक रूपों के उल्लेख के कारण उल्लेख अलङ्कार का प्रयोग हुआ है–

''कन्दर्पचैत्राविविति कामिनीजनैः सन्ध्यानयोगाविति योगिभिर्मतौ।

भावार्थशब्दाविति तौ कवीश्वरैरान्दोलयन्तौ स्वकथां विचेरतुः।।''

(श्रीरामचरिताब्धिरत्नम् 4.2)

इसी प्रकार चतुर्थ-सर्ग में भी कवि की रचना में उल्लेख अलङ्कार की छटा द्रष्टव्य है–

''सुरैः सुरेशैः स्थविरैः शिशुः प्रियो मित्रं वयस्यैर्दयितोऽङ्गनाजनैः।

त्राता प्रपन्नै रिपुभिर्यमस्तथाऽऽनन्दास्पदं ब्रह्म मतः स योगिभिः।।''

(4.35)

कवि ने काव्य के समस्त नियमों का पालन करते हुए ऋतु-वर्णन प्रसङ्ग में भी अपनी सर्जना चातुरी का कुशल परिचय देते हुए ऋतुराज वसन्त का वर्णन इस प्रकार किया है–

''पिष्टातकैरिव पलाशसुमैः तत्प्राङ्गणं युवजनाय सुरोचतेऽद्य।

सर्वे स्तुवन्ति पिकवन्दिन उच्चवंश-वंशी गिरिर्धमति नृत्यति तेऽन्तरात्मा।।''

कवि ने वर्षा-वर्णन में यमकालङ्कार का वैविध्यपूर्ण प्रयोग करते हुए लिखा है–

''रम्यं रम्यं दृगमृतवर्षं वर्षं

राज्ये राज्ये सरुचिविलोकं लोकम्।

जेमं जेमं सदशनजातं जातं

नव्यं नव्यं द्रढयति कामं कामम्।। (वही 9.42)

कवि ने इसी रचना के 13 वें सर्ग में महाकाव्य नियमानुसार समुद्रवर्णन किया है, जिसमें गौड़ी रीति के माध्यम से हर्षविरचित नागानन्द के समुद्रवर्णन का स्मरण करते हुए लिखा है–

''पर्यन्तोद्यदसंख्यशङ्खविलसद् वेलां-स्रजं बिभ्रतं
राज्यं चारु चिकीर्षुमम्मयमिवाखण्डेऽपि भूमण्डले।
क्रन्दत्क्रूर कुलीरकच्छपकुलं दृष्टवोग्रमब्धिं हृदौ–
मः संवध्य पुरः प्रयोगमजपद् मन्त्रं प्रभुर्वारणम्।।''

कवि का न केवल संस्कृत प्रत्युत् हिन्दी भाषा पर भी समानाधिकार था। जैसा कि राम कथा के सम्भोग विनोद नामक उपप्रतान में महल में स्थित पर्यङ्कादि का वर्णन कवि ने सरल एवं प्रांजल भाषा में करते हुए लिखा है–

''ऊँचा स्थान अवङ्क था भवन का, पुष्पद्य-पर्यङ्क था,
ताम्बूलीयकरङ्क था निकट में, आदर्श अभ्यङ्क था।
बीचों बीच मयङ्क था गगन के, आत्मानिरातङ्क था,
कान्तालिङ्गित अङ्क था, हृदय भी सानन्द निःशङ्क था।।''

(रामकथाकल्पलता)

कवि ने रामचरितमानस पर आधारित अपने आराध्यदेव भगवान् श्रीरामचन्द्र जी की स्तुति करते हुए लिखा है–

''आर्तानामातिहर्तारं भीतानां भीतिनाशनम्।
द्विषतां कालदण्डन्तं रामचन्द्रं नमाम्यहम्।।
नमः कोदण्ड-हस्ताय संधीकृत-शराय च।
दण्डिताखिल-दैत्याय रामायापन्निवारणे।।'' (रामकथाकल्पलता)

आपकी सर्वतोमुखी प्रतिभा एवं भाषा पर असाधारण अधिकार को लक्ष्य कर आपको 'आशुकवि', 'कविभूषण', 'कविरत्न' एवं विभिन्न प्रकार की उपाधियों सहित स्वर्णपदक से सम्मानित किया गया। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि वोन (जर्मनी) विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के प्रो. डॉ. जर्मन जे. आदि जर्मन विद्वानों ने जोधपुर

आकर आपको सम्मानित किया, साथ ही वोन विश्वविद्यालय में प्रोफेसर पद को अलंकृत करने की प्रार्थना भी की। आपका निधन 1961 में हुआ। आपके निधन से संस्कृत-जगत् को जो क्षति हुई, उसे लेखनी में समेटना सूर्य को दीपक दिखाने जैसा होगा।

'नक्षत्रमाला' उपसंहार में कवि ने अपने आत्मज माधवजी, ज्येष्ठाग्रज भगवतीलाल एवं स्वयं का उल्लेख इस पर उट्टङ्कित किया है–

''प्राज्यं राज्यं सुमेरौ धरति रतिकरंक्ष्माधवे माधवेन्द्रोः,
पुत्रं पृष्ट्वाऽग्रजं स्वं सुभग! भगवतीलाल-सन्तंलसन्तम्।
नित्यानन्दोऽयि नन्दोद्भव! भवत इमां संजयन्त्यां जयन्त्यां,
दृब्ध्वा नक्षत्रमालां सहृदय! हृदये मण्डये मण्डये स्वम्॥
नन्दानन्दाभिनन्दाऽसौ नित्यानन्दाभि निर्मिता।
नक्षत्रमाला मा–लास्य मालामालास त्विह॥''

ऐसे साहित्य सेवी एवं साहित्य समाज प्रेरक का निधन सन् १९६१ में हो गया। यह साहित्य-जगत् के लिए असहनीय घटना थी।

सन्दर्भ कोष

१. माघकृत शिशुपालवध महाकाव्य, पाण्डेय डॉ. जगन्नारायण

२. हमीर महाकाव्य, सूरि नयचन्द्र

३. मेवाड़ का संस्कृत साहित्य, पुरोहित डॉ. चन्द्रशेखर, नाग प्रकाशन, नई दिल्ली

४. उदयपुर, राजसागर झील

५. पश्चिम सांस्कृतिक केन्द्र, उदयपुर पुस्तकालय

६. राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर पुस्तकालय

७. राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर, अलवर व भरतपुर पुस्तकालय

८. मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर, पुस्तकालय व संस्कृत विभाग

९. राजस्थान विश्वविद्यालय, केन्द्रीय पुस्तकालय व संस्कृत विभाग, जयपुर

१०. राजस्थान अभिलेखागार, बीकानेर

११. जैसलमेर का जैन ग्रन्थागार, जैसलमेर, राजस्थान

१२. बिल्हणकृत 'विक्रमांकदेवचरित' महाकाव्य

१३. राजस्थान के चित्तौड़, फतेहपुर, कांकरोली, नाथद्वारा के पुस्तकालय

१४. जयपुर का पोथीखाना

१५. बीकानेर की अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर

१६. राणा कुंभा कृत गीत गोविन्द की रसिकप्रिया टीका, उदयपुर

१७. जयपुर के सवाई जयसिंहकृत 'यंत्रराज रचना', जयपुर

१८. पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी के पौत्र व संस्कृत विद्वान प्रो. ईश्वर लाल चर्तुवेदी से भेंटवार्ता

१९. संस्कृत विद्वान देवर्षि कलानाथ शास्त्री, जयपुर से भेंटवार्ता

२०. निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई का प्रकाशित 'काव्यमाला'

२१. साहित्य-मन्दाकिनी, त्रैमासिक संस्कृत शोध पत्रिका, शाहपुरा, जयपुर

२२. पृथ्वीराजविजय जयानक कवि

२३. अजितोदय महाकाव्य व अभयोदय महाकाव्य, जोधपुर

२४. जयपुर विलास, भट्ट श्रीकृष्णराम

२५. संस्कृत के चर्चित नाटककार विद्याधर शास्त्री के पुत्र संस्कृत प्रोफेसर डॉ. दिवाकर शर्मा, बीकानेर से भेंटवार्ता

२६. पं. नवलकिशोर काङ्कर के पुत्र राष्ट्रपति सम्मानित मनीषी ख्यात संस्कृत विद्वान डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर से भेंट वार्ता

२७. संस्कृतकथाकुंजम, शर्मा गणेशराम, डूंगरपुर

२८. भारतेतिवृत्तसारः (भारत का गद्यबद्ध इतिहास), शास्त्री लक्ष्मीनाथ, शेखावाटी (राज.)

२९. राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर का पुस्तकालय

३०. राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर का पुस्तकालय

३१. राजस्थान संगीत नाटक अकादमी, जोधपुर

३२. पलाण्डुमण्डनम्, संपादक प्रो. पाण्डेय ताराशंकर, जयपुर

३३. माधव स्वातंत्र्यम्, सं. दाधीच गोपीनाथ, जयपुर

३४. आकाशवाणी केन्द्र, जयपुर का नाटक व संगीत विभाग

३५. संस्कृत नाट्यवल्लरी, ले. शास्त्री कलानाथ, जयपुर, २०१४)

३६. पद्मिनी - संस्कृत उपन्यास, पाण्डेय मोहनलाल, जयपुर, २०१२

३७. संस्कृत कवि मञ्जरी : शास्त्री शंकरलाल, शाहपुरा, जयपुर

३८. शिवराजविजयम्, सं. त्रिपाठी रूपनारायण, हंसा प्रकाशन, जयपुर, २०१०

३९. भारत सौभाग्य नाटक, हरिश्चन्द्र भारतेन्दु, खड्गविलास प्रेस, १९४१

४०. कलियुग और घी, व्यास अम्बिकादत्त, नारायण प्रेस मुजफ्फरपुर, १९४२

४१. पं. अम्बिकादत्त व्यास, व्यक्तित्व एवं कृतित्व, अग्रवाल श्री कृष्णकुमार, राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर १९९५

४२. श्रीकृष्णराम भट्ट की संस्कृत साहित्य को देन, शर्मा लक्ष्मी, जयपुर

४३. संस्कृत रत्नाकर, जयपुर वि.स. २००६

४४. 'भारती' संस्कृत पत्रिका, जयपुर पुस्तकालय

४५. नागरी भवन, जयपुर 'समालोचना अङ्क'

४६. राजस्थान ग्रामोत्थान एवं संस्कृत अनुसंधान संस्थान पुस्तकालय, शाहपुरा, जयपुर

४७. श्रीचन्द्रधर शर्मा गुलेरी, जन्मशताब्दी विशेषाङ्क १६८३, राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर

४८. वासुदेवचरितम् : आचार्य जगदीश चन्द्र, राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर

४६. दूतमाधवम् : शर्मा मदन, १६६५, राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर

५०. राजस्थान के अभिलेख : गोविन्दलाल जी माली, २०००, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर

५१. राजस्थान में संस्कृत शोध, शास्त्री प्रभाकर, २०१२ जयपुर

५२. संस्कृत सूक्ति वैभवम्, शास्त्री शंकरलाल, २०१५

५३. जयपुर की संस्कृत साहित्य को देन, शास्त्री प्रो. प्रभाकर, २००५, हंसा प्रकाशन, जयपुर

५४. शिशुपालवध महाकाव्य में माघ का जीवन-दर्शन : डॉ. शंकरलाल शास्त्री

५५. नवविलास महाकाव्य एवं समीक्षक : त्रिपाठी रूपनारायण, हंसा प्रकाशन, जयपुर

५६. अथर्ववेद संगीता पद्य मय भाष्य, जोशी महावीर प्रसाद, २००५, जयपुर

चित्रवीथिका

पं. अम्बिकादत्त व्यास
जयपुर

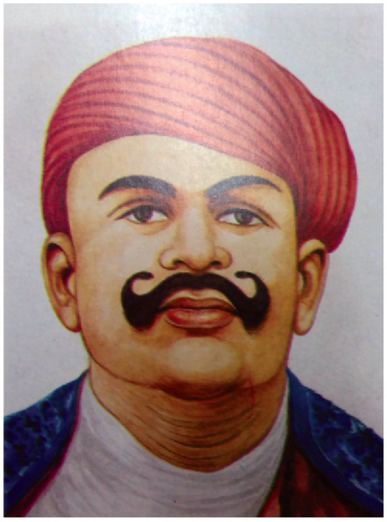

पं. श्रीकृष्णराम भट्ट
जयपुर

पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी
जयपुर

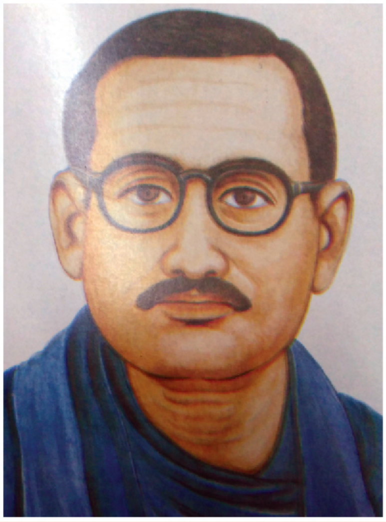

पं. चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी'
जयपुर

पं. छत्रधर शर्मा

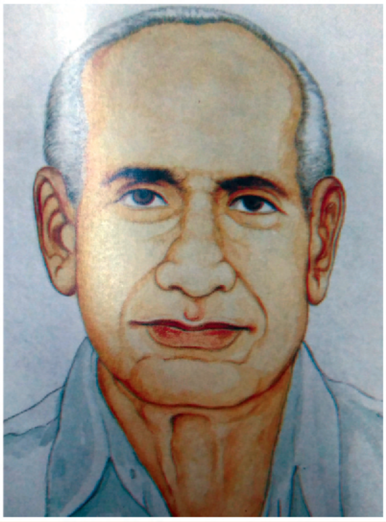

पं. जगदीशचन्द्राचार्य
जयपुर

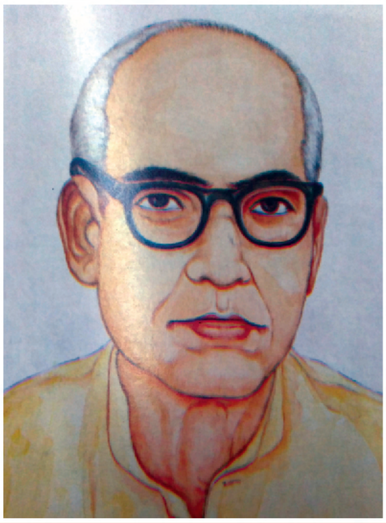

द्विजेन्द्र लाल शर्मा पुरकायस्थ
जयपुर

पं. नवलकिशोर काङ्कर
जयपुर

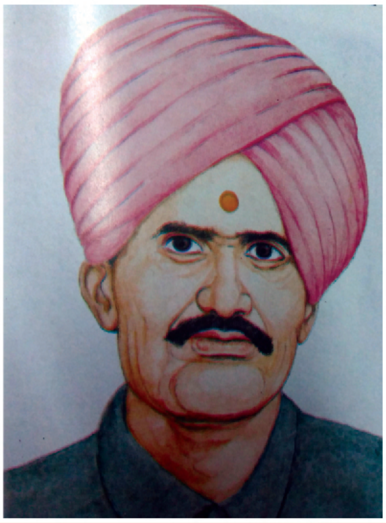

पं. नित्यानन्द शास्त्री
जोधपुर